BPYC-132
(बीपीवाईसी-132)

खण्ड 2
पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 2 परिचय

खण्ड 2 "पाश्चात्य नीतिशास्त्रीय सिद्धान्त" ग्रीक और पाश्चात्य दार्शनिक रंगमंच में विकसित कुछ मुख्य नैतिक सिद्धान्तों की चर्चा करती है। यह चार इकाईओं में विभाजित है, जिनमें विद्यार्थी अरस्तू के सद्गुण नीतिशास्त्र, इमानुएल काण्ट के कर्तव्यपरक नीति–दर्शन, जॉन स्टुअर्ट मिल के परिणामवाद को समझेगा। इस खण्ड की अन्तिम इकाई इन तीनों नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन है।

इकाई 6 "सद्गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू" मुख्यतः अरस्तू के नैतिकता–सम्बन्धी मत की चर्चा करती है। विद्यार्थी प्लेटो, अरस्तू और एन्सकॉम्ब नैतिकता को किस तरह सद्गुण के रूप में समझते हैं। सद्गुण क्या है?, मध्यम स्वर्ण पथ क्या है?, इस इकाई के आधारिक चिंत्य–विषय हैं, अरस्तू कैसे सद्गुण को मध्यम मार्ग के रूप में किस तरह परिभाषित करते हैं और अरस्तु सद्गुण को मध्यम मार्ग के रूप में परिभाषित करने में कितना सफल होते हैं?

इकाई 7 "कर्तव्यपरक नीतिशास्त्रः इमानुएल काण्ट" जर्मन दार्शनिक इमानुएल काण्ट की नैतिकता–विषयक समझ की चर्चा करती है। हम यह समझेंगे कि यह नीति–दर्शन प्रकृति में कर्तव्यपरक क्यों है। विद्यार्थी काण्ट के नीति–दर्शन की व्यावहारिक बुद्धि, शुभ–संकल्प, नैतिक सूत्र और नैतिक अभिकल्पनाओं की अवधारणा को समझेगा। इस दर्शन का आधार यह विचार है कि शुभ कर्म में निहित होता है। कर्म शुभ कर्म होने पर शुभ है और अशुभ होने पर अशुभ।

इकाई 8 "परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल" ब्रिटिश दार्शनिक जे. एस. मिल के नीति–दर्शन के बारे में है। जे. एस. मिल उपयोगितावादी दार्शनिक जेरेमी बेन्थम की परम्परा में हैं। हम जे.एस. मिल के परिणामवाद को जेरेमी बेन्थम के उपयोगितावाद के विकसित या संशोधित रूप की तरह ले सकते हैं। इस इकाई में, विद्यार्थी किसी कर्म के परिणाम को मापने के गुणात्मक और मात्रात्मक मापदण्डों के बारे में समझेगा। इस विचार का आधार यह है कि किसी कृत्य या कर्म को शुभ या उचित तभी कह सकते हैं, केवल और केवल यदि यह कृत्य अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख प्रदान करता है।

इकाई 9 "नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन" इस खण्ड का चिंत्य–विषय तीनों नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों की आलोचनात्मक परीक्षा है। विद्यार्थी न केवल इन नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों के विरुद्ध आपत्तियों को समझेगा, अपितु इन आपत्तियों से अपने मत की प्रतिरक्षा कैसे करता है, यह भी समझेगा।

इकाई 6 सद्‌गुण नीतिशास्त्रः अरस्तू*

रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 परिचय

6.2 जीवन कैसे जीना चाहिए?

6.3 प्लेटो और सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.3.1 सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.4 अरस्तू और सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.4.1 नीतिशास्त्र

6.4.2 परमसुख (आनन्द)

6.5 जी. ई. एम. एन्सकॉम्ब और सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.5.1 सद्‌गुण नीतिशास्त्र

6.6 सारांश

6.7 कुंजी शब्द

6.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्रीएवं सन्दर्भ

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस अध्याय के उद्देश्यों में निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित हैंः

- मानव व्यवहार में सद्‌गुणों की महत्ता को समझना,
- मानवीय मूल्यों का पुनरीक्षण
- न्यायसंगत, अन्यायसंगत; नैतिक, अनैतिक; सदगुण तथा अवगुण (या दुर्गुण) व्यवहार में अन्तर को समझना,
- सद्‌गुणों से परम सुख आनन्द (Eudaimonia) की प्राप्ति की व्याख्या,
- न्याय, संयम, साहस जैसे सद्‌गुणों की व्याख्या तथा मानव के अस्तित्व में इनकी अपरिहार्यता को समझना,
- अरस्तू द्वारा विकसित सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझना।

6.1 परिचय

नीतिशास्त्र को मानव के "व्यवहार का अध्ययन" करने के रूप में भी समझा जा सकता है। इसे गुण या नैतिक चरित्र का अध्ययन करने वाली एक शाखा के रूप में भी समझा जा सकता है। किसी की सहायता (आवश्यकता के समय) करनी चाहिए क्योंकि, सहायता करना मानव की दयालुता तथा सहृदयता के गुण को दिखाता है।

* डॉ. रिचा शुक्ला, सहायक प्राध्यापक, ओ. पी. जिंदल ग्लोबल विश्वविद्यालय, सोनीपत, अनुवादक– सुश्री रिंकी जादवानी, व्याख्याता (दर्शनशास्त्र), मानविकी विभाग, दिल्ली तकनीकि विश्वविद्यालय, दिल्ली

यही सद्‌गुण नीतिशास्त्र का उद्देश्य है। मानव व्यवहार को समझना तथा उसका विश्लेषण करना आज के समय की आवश्यकता है। नीतिशास्त्र की इस शाखा को अरस्तू तथा अन्य प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों द्वारा विकसित किया गया है। यह सद्‌गुण पर आधारित नीतिशास्त्र है; सद्‌गुण हमें सतत अभ्यास से प्राप्त होते हैं। यह इकाई मुख्य रूप से सद्‌गुण नीतिशास्त्र तथा इसके ऐतिहासिक पहलू पर प्रकाश डालती है। इस इकाई में हम अरस्तू के सद्‌गुण नीतिशास्त्र से आरम्भ करते हुए (सद्‌गुण नीतिशास्त्र का आरम्भ जानने के लिए) आधुनिक दर्शन में हुए परिवर्तनों के सम्बन्ध में सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझने के लिए जी. ई. एम. एन्सकॉम्ब का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई का उद्देश्य इस बात से अवगत कराना है कि प्लेटो द्वारा बताये गये सद्‌गुण जैसे न्याय, साहस, और संयम हमारे लिये कितने अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण हैं। समकालीन जगत में इन अवधारणाओं को एक बार फिर से देखने की तथा इन पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। यह अवधारणाएं आज भी किसी समाज तथा जनतन्त्र की आधारशिला की तरह काम करती हैं। इन गुणों की तुलना तथा सद्‌गुण के सन्दर्भ में इनका अवलोकन करके प्लेटो यह चाहते थे कि लोग इन गुणों के महत्त्व को सद्‌गुणों के रूप में समझे। प्लेटो लोगों को यह समझाना चाहता था कि स्वयं को जानने के साथ साथ विचारपूर्वक कर्म करना भी कितना महत्वपूर्ण है। समकालीन जगत में सद्‌गुण नीतिशास्त्र एक साधन की तरह काम करता है जिसका उपयोग मानव व्यवहार में अनैतिकता को समझने के लिए किया जा सकता है।

यह कहना गलत (भ्रामक) होगा कि सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझने के लिये प्लेटो तथा अरस्तू ही एकमात्र विचारक हैं। जैसे पश्चिम में सद्‌गुण नीतिशास्त्र को समझने के लिए अरस्तू को पढ़ना आवश्यक है, उसी प्रकार पूर्व में कन्फ्यूशियस (चीनी दार्शनिक) भी महत्वपूर्ण हैं। सद्‌गुण का अर्थ किसी व्यक्ति द्वारा अपनाये हुए आदर्श चरित्र या गुणों से है। सद्‌गुण नीतिशास्त्र के अधिकतर दार्शनिक सद्‌गुण को सर्वोच्च तथा व्यावहारिकज्ञान के रूप में देखते हैं, यद्यपि इनका संयोजन करने के प्रकार में उनके मतों में भिन्नता है। ऐसा करने के विभिन्न प्रकार हैं। इनमें से प्रथम को परम सुख या आनन्द (यूडाइमोनिया) आधारित सद्‌गुण नीतिशास्त्र कहा जाता है। ये सद्‌गुण नीतिशास्त्र को परम सुख (आनन्द) के सम्बन्ध में समझते तथा परिभाषित करते हैं। परम सुख (आनन्द) पद ग्रीक दर्शन में महत्व पाता है जहाँ इसका अर्थ आनन्द तथा मानव–उत्कर्ष लिया जाता है। इसके अनुसार सद्‌गुण मनुष्य को एक परम सुखमय जीवन की ओर अग्रसर करता है।

6.2 जीवन कैसे जीना चाहिए?

उचित तथा अनुचित में हम कैसे अन्तर करते हैं? उचित तथा अनुचित व्यवहार में हम कैसे अन्तर करते हैं? इस तरह के प्रश्नों की विस्तृत समझ के लिये नैतिक सिद्धांतों को समझना जरूरी है। सद्‌गुण नीतिशास्त्र इस तरह के प्रश्नों जैसे, "वह क्या है जो एक कार्य को उचित कार्य बनाता है", "क्या मैं एक सही व्यक्ति हूँ", पर विचार करता है। सद्‌गुण नीतिशास्त्र विशेष घटनाओं, अवस्थाओं से ही नहीं अपितु सम्पूर्ण जीवन से सरोकार रखता है, जैसे कि जीवन में सदैव सही दृष्टि और सही कर्म करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए? इसलिए सद्‌गुण नीतिशास्त्र में किसी एक अमूर्त नैतिक सिद्धांत के आधार पर कार्यों का आंकलन नही किया जाता है, बल्कि इस आधार पर किया जाता है कि वे सद्‌गुण को किस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। इससे ज्यादा महत्वपूर्ण

प्रश्न यह है कि मनुष्य को अपना जीवन कैसे जीना चाहिए? सद्गुण नीतिशास्त्रियों के अनुसार इस प्रश्न का उत्तर सद्गुण को अपने जीवन में अपनाने में निहित है, एक समाज सद्गुणी जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों से ही अच्छा समाज बनता है।

उदाहरण के तौर पर, एक औरत जिसके पास कर्ज चुकाने के लिए रूपये नही हैं, वह अपनी मित्र के घर जाती है और वहाँ उसकी अलमारी में बहुत सारा नकद रूपये देखती है। उसे यह भी पता है कि उसकी मित्र बहुत धनी परिवार से है। वह यह भी जानती है कि यदि वह कुछ नकद ले लेती है तो इससे उसकी मित्र के जीवन में कोई प्रभाव नही पड़ेगा। जब वह औरत इस दुविधा में है कि उसे क्या करना चाहिए, ऐसी ही दुविधाओं से सद्गुण नीतिशास्त्र का सरोकार है। उसे कैसा जीवन जीना चाहिए? हमें यह बताया जाता है कि चोरी करना बुरी बात है लेकिन यहाँ दिये गये उदाहरण में, वह औरत चोरी करके अपना कर्ज चुका सकती है। इस स्थिति में वह क्या करती है? क्या इस तरह का जीवन उसके लिए एक बेहतर विकल्प होगा? इस तरह के उदाहरणों में हम सद्गुण नीतिशास्त्र को देखते हैं कि क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि हमें किस प्रकार का जीवन जीना चाहिए। उनके अनुसार परम सुख (आनन्द) जीवन का उद्देश्य है तथा सद्गुण इसे प्राप्त करने में एक साधन की तरह काम करता है। सद्गुण का अर्थ यहाँ उन गुणों से है जिससे व्यक्ति को परम सुख (आनन्द) या सुख की प्राप्ति हो सकती है।

चरित्र का क्या लक्षण होता है? हम किसी की प्रशंसा क्यों करते हैं? सद्गुणों से ही हमें यह पता चलता है कि कोई व्यक्ति कैसा है जिसकी हम प्रशंसा करते हैं। हम व्यक्ति के सद्गुण की ही प्रशंसा करते हैं। यह भी सम्भव है कि हम किसी ऐसी बात की भी प्रशंसा कर सकते हैं जो प्रशंसा योग्य नहीं हो। हम ईमानदारी, सुन्दरता, बुद्धि, साहस आदि की प्रशंसा करते हैं। यदि किसी के पास साहस है, हम उसकी प्रशंसा करते हैं, और अगर उनके पास साहस नही है तो हम उनका निरादर कर सकते हैं। इसलिए सद्गुण का अर्थ उत्कृष्टता तथा श्रेष्ठता (पूर्णता) से भी है। उत्कृष्ट तथा उत्तम व्यवहार ही सद्गुण है। उदाहरण स्वरूप हम महात्मा गाँधी, मदर टेरेसा की प्रशंसा उनके कुछ ऐसे चरित्र के कारण करते हैं जिन्हें हम स्वयं भी अपनाना चाहते हैं। चाहे वह दया हो, करूणा हो, प्रेम हो या सेवा भाव हो, हम इन्हें अपने व्यवहार में लाना चाहते हैं, इसलिए इन गुणों को जब हम किसी दूसरे के व्यवहार में देखते हैं तो हम उन्हें पसन्द करते हैं, उनकी प्रशंसा करते हैं। ग्रीक दार्शनिकों के अनुसार इन्हें सद्गुण कहा जा सकता है जो हमें परम सुख की अवस्था तक पहुँचने में मदद करते हैं, जो कि परम शुभ, श्रेयस तथा पूर्णता की स्थिति है।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु नीचे दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) सद्गुण नीतिशास्त्र क्या है?

....

....

....

....

2) क्या कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र तथा सद्गुण नीतिशास्त्र में कोई अन्तर है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

3) क्या सद्गुण नीतिशास्त्र एक सद्गुणी जीवन जीने में विश्वास करता है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

4) समकालीन जगत में सद्गुणों की क्या प्रासंगिकता है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

6.3 प्लेटो और सद्गुण नीतिशास्त्र

प्लेटो (428–437) ग्रीक परम्परा के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में से एक थे। प्लेटो अरस्तू के गुरु तथा ऐथेन्स में एकेडमी के संस्थापक थे। उनके प्रमुख ग्रन्थों मे *एपॉलॉजी, फीडो, रिपब्लिक, मीनो, लॉज, सिम्पोजियम* शामिल हैं। प्लेटो का दार्शनिक चिंतन करने का एक महत्वपूर्ण ढंग संवाद करना था। संवाद चिंतन की एक महत्वपूर्ण प्रणाली के रूप में कार्य करता है। प्लेटो के सबसे प्रमुख ग्रन्थ *रिपब्लिक* में सम्पूर्ण विचार विमर्श संवाद के रूप में ही किया गया है। *रिपब्लिक* में सद्गुण नीतिशास्त्र पर भी महत्वपूर्ण संवाद निहित हैं।

6.3.1 सद्गुण नीतिशास्त्र

प्लेटो ने 'परम सुख' केन्द्रित सद्गुण पर आधारित नीतिशास्त्र का समर्थन किया। यदि नैतिक आचरण का सर्वोच्च साध्य आनन्द है, तब सद्गुण परम शुभ को प्राप्त करने के लिए एक साधन की तरह काम करता है। प्लेटो ने *रिपब्लिक* में नीतिशास्त्र का उल्लेख किया है जो परम शुभ पर आधारित है। प्लेटो द्वारा बताये गये चार सद्गुण हैं :

विवेक

संयम

साहस

न्याय

प्लेटो के नीतिशास्त्र का उद्देश्य लोगों को परम शुभ की प्राप्ति करवाना था जिसे श्रेयस या पूर्णता की अवस्था से भी जाना जाता है। प्लेटो ने "स्वयं को जानो" के लिए विचार–विमर्श किया, सुकरात ने कहा, "एक अपरीक्षित जीवन जीने योग्य जीवन नहीं है"। प्लेटो तथा सुकरात दोनों ही इस बात पर विचार कर रहे थे कि जीवन किस प्रकार जीना चाहिए? *रिपब्लिक* को अधिकतर लोग एक राजनीतिक ग्रन्थ ही मानते हैं जो सिर्फ राज्य तथा न्याय पर ही विचार करता है, जबकि यह ग्रन्थ सद्गुण नीतिशास्त्र पर भी बहुत से विचार प्रस्तुत करता है। प्लेटो ने न्याय को अन्तिम तथा सबसे महत्वपूर्ण सद्गुण माना है जो मनुष्य के पास होना चाहिए।

सद्गुण पर एक संवाद में प्लेटो कहते हैं कि राज्य, समुदाय तथा दर्शन मनुष्य को सद्गुणी जीवन जीने में सहायता करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सद्गुण पर प्लेटो के अपने शिष्यों के साथ किये गये बहुत सारे संवाद मिलते हैं। प्लेटो के अनुसार एक न्यायशील व्यक्ति वह है जिसे स्वयं पर नियंत्रण है और जो अपनी इच्छाओं का दास नही है।

Soul आत्मा	**State राज्य**	**Virtue सद्गुण**
Reason Rational विवक	Ruler शासक	Wisdom/Knowledge प्रज्ञा / ज्ञान
Spirit जीवात्मा	Guardians (Soldiers) संरक्षक (सैनिक)	Bravery/Courage/Loyalty वीरता / साहस / निष्ठा
Appetite सम्वेग	Citizens नागरिक	Temperance संयम

सारणी 1. आत्मा, राज्य और सद्गुण की त्रयी प्रकृति

आत्मा तथा राज्य के तीन भागों के समकक्ष सद्गुण के भी तीन भाग हैं। बुद्धि या ज्ञान विवेक के सद्गुण है। शासक, योद्धा, तथा सैनिक, जो राज्य की सुरक्षा करते हैं, वे अंतः जीव (Spirit) के समकक्ष आते हैं तथा वीरता और निष्ठा के सद्गुण साझा करते हैं। यहाँ इन दोनों सद्गुणों को बराबर नहीं बल्कि एक दूसरे से सम्बन्धित समझा जाना चाहिए। सैनिक, जिन्हें राज्य के संरक्षक की तरह भी देखा जाता है, उन्हें इतना साहसी होना चाहिए ताकि उन्हें निडर कहा जा सके, तथा उन्हें समाज तथा राज्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। नागरिकों के पास क्षुधा और सद्गुण के रूप में संयम है, उन्हें आत्म संयमित होना चाहिए।

ये सभी मूल सद्गुण हैं जो व्यक्ति के जीवन में होने चाहिए। अन्य सभी सद्गुण इन्हीं से उत्पन्न होते हैं। पहला सद्गुण साहस है, यह सबसे महत्वपूर्ण सद्गुण है; धैर्य, उदारता का मूल भी साहस में ही निहित है। संयम का अर्थ संतुलन, साम्य बनाये रखने से है। शुद्धता, संतोष, विश्वसनीयता इसी सद्गुण से आते हैं। प्रज्ञा से ज्ञान (समझ) उत्पन्न होता है। अन्तिम सद्गुण न्याय है, जिसका अर्थ निष्पक्षता तथा सत्यता है, न्याय दयाभाव के साथ आता है, इन सभी गुणों की तुलना में सद्गुण अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

रिपब्लिक में न्याय का विचार एक बूढ़े व्यक्ति से संवाद के साथ शुरू होता है जहाँ वह कहता है, "न्याय का अर्थ है किसी को कोई क्षति न पहुँचाना", शुभ तथा नैतिकता पर भी इसमें वैचारिक विमर्श मिलता है। न्याय शुभ है क्योंकि इसका परिणाम शुभ होता है, यह शुभ है क्योंकि यह हमें एक–दूसरे को हानि पहुँचाने से रोकता है। *रिपब्लिक* में जीवंत संवाद तथा वार्तालाप निहित हैं (जिन्हें भारतीय दार्शनिक दयाकृष्ण संवाद कहते हैं)। वह एक आधारभूत प्रश्न पूछते हैं कि "हमें अच्छा क्यों होना चाहिए"? न्याय ऐसा सद्गुण है जिसका सम्बन्ध प्रत्येक से है, समाज से है। एक समाज तब तक अधूरा है जब तक वह अपने नागरिकों को न्याय का आश्वासन नही दे सकता। न्याय, समन्वय में निहित है, यह समाज की सबसे मूलभूत, नैतिक तथा सामाजिक आवश्यकता है।

6.4 अरस्तू और सद्गुण नीतिशास्त्र

अरस्तू (384–322 ईसापूर्व) को ग्रीक दर्शन का सबसे अग्रणी दार्शनिक कहा जा सकता है। अरस्तू ने तर्कशास्त्र, ज्ञानमीमांसा, तत्वमीमांसा, नीतिशास्त्र तथा धर्मशास्त्र पर अपने दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये। अरस्तू प्लेटो का शिष्य था, उसने प्लेटो के प्रत्ययवाद की आलोचना की। अरस्तू को तर्कशास्त्र का जनक भी कहा जाता है। अरस्तू ने ही सबसे पहले तर्क करने की चरणबद्ध प्रणाली को विकसित किया जिसमें तर्क तथा प्रतिज्ञप्तियां शामिल हैं। उनकी अधिकतर कृतियाँ व्याख्यानों और टिप्पणियों के रूप में रचित है।

6.4.1 नीतिशास्त्र

हम अपना जीवन श्रेष्ठ रूप में कैसे जी सकते हैं? अरस्तू के अनुसार हमें यह प्रश्न बार–बार स्वयं से पूछते रहना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अरस्तू ने नीतिशास्त्र की शाखा सद्गुण नीतिशस्त्र का प्रतिपादन किया। *निकोमेकियन एथिक्स* में अरस्तू के लिये सबसे बड़ा प्रश्न यही है कि 'शुभ क्या है'? मानवता के लिए सद्गुण प्राप्त करना तथा सद्गुणी व्यक्ति बनना शुभ है। इस प्रश्न का अनुसरण करते हुए अरस्तू ने सद्गुण तथा व्यावहारिक ज्ञानपर विचार किया। व्यावहारिक ज्ञान (फ्रोनेसिस) एक बौद्धिक सद्गुण है जो कि नैतिक सद्गुणों को प्राप्त करने के लिय आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। सैद्धान्तिक ज्ञान इसके अलावा एक अन्य प्रकार का ज्ञान है जिसे सभी नित्य सत्यों का निःश्रेयस भी कहा जा सकता है। साहस, ईमानदारी, निष्ठा, संयम तथा अखण्डता कुछ विभिन्न प्रकार के सद्गुण हैं। अरस्तू ने नैतिक सद्गुणों के बारे में बात की, जो इस प्रकार हैंः

साहस

संयम

उदारता

गौरव

सदाशयता

आकांक्षा

सत्यता

बुद्धिमता

ईमानदारी

नम्रता

मित्रता

अरस्तू ने प्लेटो के प्रमुख सद्गुणों को इन सद्गुणों में विभाजित किया। उन्होंने बौद्धिक सद्गुणों को भी जोड़ा जिसमें विवेक तथा सैद्धान्तिक प्रज्ञा शामिल हैं।

अरस्तू कहते हैं कि 'हम वैसे ही बनते हैं जैसा कार्य हम बार बार करते हैं', तो एक सुखी जीवन जीने के लिए मनुष्य को सद्गुणों के साथ जीना तथा आगे बढ़ना चाहिए। अरस्तू कहते हैं कि एक बार झूठ बोलने से तुम झूठे नहीं बनोगे, यदि तुम बार बार झूठ बोलोगे तब तुम्हें झूठा कहा जायेगा, क्योंकि यह तुम्हारी एक आदत बन गयी। इसी प्रकार सद्गुणों को अपने जीवन में बार बार दोहराकर सद्गुणों का अभ्यास किया जा सकता है।

6.4.2 परम सुख (आनन्द) (Eudaimonia)

इस ग्रीक शब्द को आनन्द, शुभता/श्रेयस या मानव उत्कर्ष भी कह सकते हैं। सद्गुण अच्छे जीवन या आनन्द की ओर ले जाता है। सद्गुण का विपरीत दुर्गुण है। यहाँ पर दो चरम स्थितियाँ हो सकती हैं, उदाहरण के लिए, न्यूनता का दुर्गुण तथा अधिकता का दुर्गुण। उदाहरणतया यदि किसी को लुटता हुआ देखकर अपनी जान बचाने के लिए यदि तुम भाग जाते हो तो वह तुम्हारे अन्दर साहस के सद्गुण की कमी कहलायेगी। या फिर यदि किसी के पास बन्दूक है और तुम उसे निहत्थे ही रोकने का प्रयास कर रहे हो तब यह साहस के सद्गुण की अधिकता कहलायेगी। पुलिस की सहायता लेना यहाँ सबसे उचित होगा जिससे तुम अपने आप को तथा उस व्यक्ति को भी बचा सकते हो। सद्गुण भी दो चरम के बीच मध्यम मार्ग की तरह काम करता है।

बौद्धिक सद्गुण को विकसित करके वयक्ति सबसे बड़ा सुख प्राप्त कर सकता है। साहस का सद्गुण कायरता तथा अत्यधिक उतावला होने के मध्य का मार्ग अपनाता है। अरस्तू के अनुसार बौद्धिक तथा चारित्रिक सद्गुणों को अपनाना ही सर्वोच्च शुभ है, तथा यही परम सुख की अवस्था है।

6.5 जी. ई. एम. एन्सकॉम्ब और सद्गुण नीतिशास्त्र

एलिजाबेथ एन्सकॉम्ब या मिस एन्सकॉम्ब, जैसा कि उन्हें जाना जाता है, बीसवीं शताब्दी की प्रमुख दार्शनिक थीं। वह धार्मिकता में विश्वास करने वाली तथा सद्गुण नीतिशास्त्री थीं। वह नीतिशास्त्र तथा क्रिया दर्शन में अपनी रचनाओं की वजह से जानी जाती हैं। उनकी प्रमुख रचनाओं में उनके लेख "आधुनिक नैतिक दर्शन" ('Modern Moral Philosophy') तथा "इन्टेन्शन्स" ('Intention') शामिल हैं। उन्होंने लुडविग विट्गेन्स्टाइन की कुछ रचनाओं का अनुवाद किया।

6.5.1 सद्गुण नीतिशास्त्र

एन्सकॉम्ब अपने लेख, "आधुनिक नैतिक दर्शन", में उन ब्रिटिश नैतिक दार्शनिकों के उस ढंग की आलोचना की, जिस तरीके से वे उस समय तक सिद्धान्तों को प्रतिपादित कर रहे थे जो कि नीतिशास्त्र के नियम सम्बन्धी संकल्पनाओं में परिणत हुआ।

एन्सकॉम्ब ने जे. एस. मिल. तथा इमानुएल काण्ट की आलोचना सार्वभौमिक सिद्धान्तों पर उनकी निर्भरता की वजह से की, जिनकी अन्तिम परिणति नैतिक आचार के नियम में होती है। ये नैतिक दार्शनिक किसी भी तरीके से एक दूसरे से अलग नहीं थे। उन सभी के नैतिक दर्शन में कर्तव्य का पालन करना ही केन्द्रीय विचार बन गया है। एन्सकॉम्ब ने, हम किस तरह नीतिशास्त्र तथा सद्गुण को अब तक देखते आये हैं, इस पर पुनः मूल्यांकन तथा पुनः विचार करने की आवश्यकता पर ध्यान दिया। एन्सकॉम्ब के अनुसार, हमारी स्वयं की इच्छाशक्ति अपने आप में नैतिक कर्तव्य का साथ देने में असमर्थ है।

एन्सकॉम्ब ने काण्ट के साथ–साथ उपियोगितावाद के सिद्धान्त की आलोचना की। ब्रिटिश नैतिक दार्शनिकों पर एन्सकॉम्ब की यह प्रतिक्रिया थी कि वे यह स्वीकार करते हैं कि नैतिकता को देखने वाला एक ईश्वर है और वही हमारे नैतिक कर्तव्यों का आधार है। नैतिक कर्तव्य सिर्फ दैवीय सत्ता के सम्बन्ध में ही अपना अर्थ पाते हैं। यदि ऐसा नहीं है तब उन्हें नैतिक सिद्धान्तों के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में कर्तव्य को छोड़ देना चाहिए, ताकि नैतिक दार्शनिक अपनी आवश्यकता अनुसार, अभिप्राय, इच्छा, सुख, उद्देश्य, कर्म, तथा भावना की संकल्पना का पुनः मूल्यांकन कर सकें। एन्सकॉम्ब ने कर्तव्यपरक नैतिकता तथा परिणामवादी नैतिकता दोनों का खण्डन किया।

बोध प्रश्न II

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु नीचे दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) क्या सद्गुण नीतिशास्त्र इस बात का उत्तर देता है कि हमें क्या करना चाहिए?

....

....

....

....

....

2) अरस्तू के अनुसार विभिन्न प्रकार के सद्गुण कौन से हैं?

....

....

....

....

....

3) क्या अरस्तू तथा एन्सकॉम्ब के सद्गुण नीतिशास्त्र में कोई अन्तर है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

4) क्या न्याय को एक महत्वपूर्ण सद्‌गुण माना जा सकता है? यदि हाँ, व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

6.6 सारांश

अभी तक हमने देखा कि नीतिशास्त्र को विस्तृत तौर पर दो से तीन तरह से समझा जा सकता है। इनमें से एक तरफ अरस्तू द्वारा दिया गया परम सुख या आनन्द का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है तथा दूसरी तरफ एन्सकॉम्ब के सद्‌गुण नीतिशास्त्र का समीक्षात्मक संस्करण मिलता है। समकालीन जगत में कथनी/करनी/नैतिकता में बहुत सारे उल्लंघन देखने को मिल सकते हैं। कुछ का यह मानना है कि हम उत्तर–आधुनिक जगत में रहते हैं जहाँ मूल्यों का कोई महत्व नहीं है। लेकिन हम जिस भी जगत में रहते हैं, क्या मूल्य विहीन और सद्‌गुण विहीन जीवन की कोई महत्ता/सार्थकता होगी। दर्शन संवाद, जो अधिकतर पुरुष केन्द्रित रहा, वहाँ एक महिला दार्शनिक ने आधुनिक दर्शन में नीतिशास्त्र की समीक्षा की। कई समकालीन दार्शनिक नैतिक सिद्धान्तों पर काम कर रहे हैं, उनमें से कुछ एलेसडायर मैकिन्टायर, जे. कॉटिंघम और जे. ड्राइवर प्रमुख हैं।

6.7 कुंजी शब्द

यूडाइमोनिया (Eudaimonia) : इस ग्रीक पद को आनन्द, शुभता/श्रेयस् या मानव–उत्कर्ष कहा जा सकता है।

फ्रोनेसिस (Phronesis) (ग्रीक पद) : बौद्धिक विवेक।

6.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

अरस्तू. *निकोमेकियन एथिक्स.* ट्रान्स. जे ऐ के थॉमसन. लन्दनः पेन्गुइन बुक्स, 2004.

एन्सकॉम्ब. "मॉर्डन मॉरल फिलॉसोफी", फिलॉसोफी, 33/125: 1–19. https://www-jstor-org/stable/3749051.

जे. डॉरिस, परसन्स. "सिचुएशन्स एण्ड वर्चु एथिक्स". नाउस, 32/4: 504–530. https://www-jstor-org/stable/2671873.

एनस, जूलिया. "वर्चु एथिक्स", इन *दि ऑक्सफोर्ड हैन्डबुक ऑफ एथिकल थ्योरी.* एडिटेडः डेविड कॉप, 2009. DOI: 10-1093/oÛfordhb/9780195325911-003-0019

पॉडकास्ट तथा वेब रिसोर्सेस

https://podcasts-oÛ-ac-uk/what&virtue&ethics

https://thevirtueblog-com/virtue&talk&2/

https://philosophybites-com/2014/12/julia&annas&on&what&is&virtue&ethics&for-html

http://thepanpsycast-com/panpsycast2/2017/8/3/aristotle&part&i

https://www-bbc-co-uk/programmes/p005489r

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) सद्गुण नीतिशास्त्र, दर्शन की एक शाखा है जो सद्गुण को मुख्य संकल्पना मानती है। यह इस बात को समझने का प्रयास करती है कि जीवन कैसे जीना चाहिए। इसका सम्बन्ध कर्तव्यों से नही बल्कि गुण या सद्गुणों से है जो एक अच्छा जीवन जीने के लिए अवश्य होने चाहिए। यह मानव जीवन को कर्तव्यवादी तथा परिणामवादी नैतिक दर्शन के द्वन्द से समझने का प्रयास नही करता। इसके अनुसार आनन्द (यूडेमोनिया या यूडाइमोनिया) सर्वोच्च सुख की अवस्था है, व्यावहारिक विवेक आनन्द को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

2) हाँ, कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र तथा सद्गुण नीतिशास्त्र में अन्तर है। डिऑन्टोलाजी पद ग्रीक शब्द डिऑन ('deon') तथा लोगोस ('logos') से मिलकर बना है। प्रथम, वह नैतिक सिद्धान्त हैं जो कर्तव्य तथा नैतिकता पर अधिक बल देते हैं। इसके अनुसार कुछ कार्य करने चाहिए क्योंकि वे कर्तव्य के क्षेत्र में आते हैं, जैसे कि "कर्तव्य के लिए कर्तव्य"। कर्तव्यवादी नैतिक दर्शन के एक प्रमुख प्रतिपादक इमानुएल काण्ट हैं।

3) हाँ, सद्गुण नीतिशास्त्र एक सद्गुणों से युक्त जीवन जीने में विश्वास रखता है। ग्रीक दार्शनिक जैसे सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू शुभ तथा सर्वोच्च शुभ को परिभाषित करने की कोशिश की, उन्होंने ऐसे जीवन के बारे में विचार करना शुरू किया जो सद्गुणों द्वारा संचालित होगा। इन सभी दार्शनिकों ने सद्गुणों का अलग अलग तरह से विभाजन किया, जिनमें से कुछ साहस, संयम, मित्रता, धैर्य, उदारता आदि हैं।

4) हाँ, सद्गुण समसामयिक जगत में हमारी सहायता करते हैं। चाहे हमारे व्यवहार में, आचरण में, या हम किस तरह से जीवन जीना चाहते हैं, सद्गुण इन सभी में द्योतक/सूचक का काम करते हैं। वर्तमान समय में, जहाँ हमें अन्याय, कायरता, स्वार्थ तथा अपरिपक्वता देखने को मिलती है, वहाँ सद्गुण की बहुत प्रासंगिकता है। स्वयं पर, अपने आचरण पर ध्यान देने के लिए हमें सद्गुण नीतिशास्त्र पर लौटने की आवश्यकता है। इसका आधार हैः स्वयं को जानो, अपने कार्यों की समीक्षा करो, अपनी गलतियों पर ध्यान दो। जब हम अपने कार्य का तथा वर्तमान समय में अपने आचरण का विश्लेषण करते हैं तब ध्यान देने और समीक्षा करने जैसे तत्व अनुपस्थित होते हैं, इसलिए सद्गुण नीतिशास्त्र महत्वपूर्ण और प्रासंगिक भी है।

बोध प्रश्न II

1) नहीं, सद्गुण नीतिशास्त्र एक नैतिक सिद्धान्त है जो व्यक्ति के चरित्र तथा आचरण पर केन्द्रित है ना कि नियमों पर। आनन्द (Eudaimonia) की वजह से

कोई व्यक्ति नैतिक बनता है। अरस्तू के अनुसार सद्गुण का प्रत्यय प्रकृति द्वारा हमें दिया गया है, सद्गुणी होने की प्रकृति। सद्गुण मनुष्य को अच्छे व्यवहार की ओर ले जाता है।

2) अरस्तू के अनुसार, साहस कायरता तथा उतावलेपन के बीच का मध्यम मार्ग है। कायरता साहस की कमी है, और उतावलापन साहस की अधिकता, दोनों ही चरम स्थिति हैं और दोनों ही बुरी हैं। अरस्तू के शब्दों में, "साहस, कार्य करने के लिए सही रास्ते को पाना है"। सही कार्य हमेशा दो चरम के मध्य का मार्ग होगा। ईमानदारी, क्रूर ईमानदारी तथा उन बातों को कहने की असमर्थता जिन्हें कहना चाहिए, के मध्य का मार्ग है। यही उदारता पर भी लागू होता है। व्यक्ति तब सद्गुणी बनता है जब वह सीखता है, तथा वैसा काम करता है।

3) सैद्धान्तिक रूप से दोनों ही सिद्धान्त सद्गुण नीतिशास्त्र से सम्बद्ध हैं। एन्सकॉम्ब ने एक धार्मिक विश्वासी तथा सद्गुण नीतिशास्त्री की तरह काम करना शुरू किया। उन्होंने सद्गुण नीतिशास्त्र का पुनरू मूल्यांकन किया। एन्सकॉम्ब ने यह विवेचन किया कि या तो हमें सद्गुण नीतिशास्त्र पर फिर से विचार करना चाहिए या फिर हमें ईश्वर के अस्तित्व को परिभाषित करना तथा समझना चाहिए जो नैतिक दर्शन में अनुपस्थित था।

4) हाँ, प्लेटो के द्वारा न्याय को एक महत्वपूर्ण सद्गुण की तरह देखा तथा विचारा गया है। इस सद्गुण का सबसे श्रेष्ठ पहलू यह है कि यह व्यक्ति तथा समूह दोनों पर प्रभाव डालता है। प्लेटो बहुत बुद्धिमान थे, कि उन्होंने इसे अपने आप में एक साध्य की तरह देखा, ना कि किसी उद्देश्य को पाने के लिए एक साधन की तरह। प्लेटो यह मानते थे कि किसी भी समाज को सामंजस्यपूर्ण तथा सद्गुणी होने के लिए इन सद्गुणों का होना बहुत आवश्यक है, और उन सभी सद्गुणों में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण न्याय है। प्लेटो के अनुसार न्याय किसी भी समाज तथा प्रजातन्त्र के लिए अनिवार्य है। इससे यह साफ हो जाता है कि प्लेटो अपने समय के शीर्ष दार्शनिकों में से एक थे और यही कारण है कि उन्होंने न्याय पर इतना विचार किया तथा इसे जितना हो सकता था, उतना ज्यादा से ज्यादा अनुकूलनीय बनाने का प्रयास किया।

इकाई 7 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र : इमानुएल काण्ट*

रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 परिचय
7.2 परिणामवाद बनाम कर्तव्यशास्त्र
7.3 मानकीय नीतिशास्त्र और कर्तव्यशास्त्र
7.4 कर्तव्यशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्त
7.5 इमानुएल काण्ट
7.6 काण्ट का कर्तव्यपरक या परिणाम–निरपेक्ष नीति–दर्शन
7.7 सापेक्ष आदेश
7.8 निरपेक्ष आदेश
7.9 सारांश
7.10 कुंजी शब्द
7.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ
7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के लक्ष्य हैं,

- परिणामवाद और कर्तव्यशास्त्र के मध्य अन्तर को समझना।
- कर्तव्यशास्त्र के सिद्धान्तों को जानना।
- नैतिक आदेशों के अर्थ और महत्ता को समझना।
- काण्ट के नीति–दर्शन को समझना।

7.1 परिचय

'डिऑन्टोलोजी' पद ग्रीक पदों 'डिऑन' और 'लोगोस' के योग से बना है। जिसमें 'डिऑन' पद, कर्तव्य को संदर्भित करता है और 'लोगोस', विज्ञान को संदर्भित करता है। कर्तव्यपरक या कर्तव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का विचारणीय विषय लोगों के कृत्य हैं, न कि उन कृत्यों के परिणाम। इसी कारण से इसे परिणाम-निरपेक्षवाद भी कहा जाता है। यह दार्शनिक विचारधारा कर्तव्य और मानवीय आचरण/कृत्य के मध्य सम्बन्ध की उच्च महत्ता बताता है। कोई कृत्य नैतिक रूप से शुभ/अच्छा है, क्योंकि यह स्वयं में शुभ/अच्छा है; यह शुभत्व के कुछ विशिष्ट पहलू रखता है। इसीलिए कुछ कार्य/कृत्य कर्तव्य की प्रकृति के होते हैं। 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य', 'ईमानदारी स्वयं में शुभ है'

---

* डॉ. रिचा शुक्ला, सहायक प्राध्यापक, ओ. पी. जिंदल ग्लोबल विश्वविद्यालय, सोनीपत, अनुवादक– डॉ. आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू

जैसे पद कर्तव्यशास्त्र को विवेचित करने वाली कुछ अभिव्यक्तियां हैं। अतः, किसी कृत्य को उचित या अनुचित कौन नियत करता है? कर्तव्यशास्त्र के अनुसार, उचित और अनुचित कृत्य के मध्य अन्तर नियम या सिद्धान्त करते हैं। 'असत्य मत बोलो', 'चोरी मत करो', 'धोखा मत दो' इत्यादि अभिव्यक्तियां इसके अंग हैं। इन नियमों को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है: 1) वे नियम जो कहते हैं कि हमें क्या करना चाहिए (कर्तव्यपरक, विधि, बाध्यकारी), 2) नियम जो कहते हैं कि हमें क्या नहीं करना चाहिए (निषेध), 3) नियम जो कहते हैं कि हम क्या कर सकते हैं (अनुमोदित परन्तु न तो कर्तव्य और न ही निषेध)। कर्तव्यपरक या परिणाम–निरपेक्ष नीति–दर्शन कहता है कि बिना परिणाम पर विचार किये कुछ कृत्यों से दूर रहना (न करना) हमारा कर्तव्य है। यदि नैतिक नियम है कि 'असत्य मत बोलो', तो यह हमारा कर्तव्य है कि किसी भी परिस्थिति में हम असत्य न बोलें। कर्तव्यशास्त्र और परिणामवाद मानवीय आचरण या व्यवहार के विश्लेषण के विषय में एक–दूसरे के विरोधी हैं।

7.2 परिणामवाद बनाम कर्तव्यशास्त्र

जैसाकि नाम सुझाता है 'परिणामवाद' किसी कृत्य का मूल्य इसके 'परिणाम' को देखकर मापता है। अनेक कई जो परिणामवाद की आलोचना करते हैं और कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का समर्थन करते हैं, वे यह वस्तुनिष्ठता और संहिता या आचरण के नियमों के आधार पर करते हैं। कुछ आलोचक कहते हैं कि परिणामवाद आत्मनिष्ठतावाद या विषयिनिष्ठतावाद को अधिक प्रश्रय देते हैं, जब वे यह कहते हैं कि किसी कृत्य का उचित या अनुचित के रूप में मूल्यांकन उनके द्वारा उत्पन्न परिणामों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, 'कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र' में आत्मनिष्ठता का कोई स्थान नहीं है; अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के अनुसार आचरण करो, संहिता के नियम के अनुसार कृत्य करो। दृष्टान्ततः, जब आप अपने साथी से विश्वासघात करते हैं और उसके संदेह करने पर आप असत्य बोलते हैं कि आप उसे आघात नहीं पहुँचाना चाहते थे। परिणामवाद के दृष्टिकोण से, इसे उचित कहा जायेगा क्योंकि असत्य बोलने का परिणाम साथी को आघात न पहुँचाना है। इस प्रकार परिणामवादी किसी कृत्य का मूल्य या औचित्य इसके परिणाम से मापते हैं। किसी कृत्य का वृहद शुभ उस कृत्य के परिणाम या फल को ध्यान में रखकर विश्लेषित किया जाना चाहिए। जबकि कर्तव्यशास्त्र में यह नैतिक दायित्व और नियमों से सम्बन्धित है; नैतिक नियमों के अनुसार कृत्य किया जाना चाहिए। उपरोक्त उदाहरण में, 'कर्तव्यशास्त्री' इसे अनुचित कहेंगे क्योंकि अन्ततः आप न केवल अपने साथी को धोखा दे रहे हैं, अपितु असत्य न बोलने के सिद्धान्त का भी अतिक्रमण कर रहे हैं। अतः कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के अनुसार, आपको अपने साथी के सामने अपने अपराध को स्वीकार करना चाहिए चाहे फिर उसके आपको क्षमा करने का अवसर न्यून हो और आपका वैवाहिक सम्बन्ध समाप्त हो जाए।

'कर्तव्यपरक सिद्धान्त' परिणाम का महत्व नहीं है, अपितु अभिप्राय या नीयत का है। हम क्या करते हैं और कैसे करते हैं की अपेक्षा के बिना, जो अनुचित है वह अनुचित है। बिना इस तथ्य की अपेक्षा के कि असत्य बोलकर आप अपने वैवाहिक–सम्बन्ध को बचा सकते हैं, आप विश्वासघाती हैं यदि आप अपने साथी के प्रति विश्वासघात करते हैं। आप विश्वासघाती भी हैं और असत्यवादी भी।

परिणामवादी नीतिशास्त्र और मूल्यपरक नीतिशास्त्र के साथ, ये सिद्धान्त भी बहुत लोकप्रिय हैं, कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र मानकीय नीतिशास्त्र का महत्वपूर्ण घटक है। आपका विधि के अनुसार कार्य करना या न करना, नियमों का पालन करना या न करना, ही महत्वपूर्ण है। आपका कृत्य तभी उचित होगा जब नैतिक सिद्धान्त (नैतिक नियमों/परिपाटियों) से मेल खाता हो। उदाहरणार्थ, आप निर्धन हैं और भूखे मर रहे हैं। आप अपने लिए भोजन नहीं खरीद सकते। आप देखते हैं कि सड़क पर एक व्यक्ति अपने रुपयों के प्रति लापरवाह है। आप जानते हैं कि यदि आप उससे धन चुरा लेते हैं, आप स्वयं के लिए भोजन खरीद सकते हैं और आप भूखों नहीं मरेंगे। कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के अनुसार, भूख से मरने की अवस्था में भी आपको रुपये नहीं चुराना चाहिए, क्योंकि चोरी करना गलत है।

इस सिद्धान्त की आलोचना अत्यन्त कठोर और प्रतिबन्धकारी होने के आधार पर की गई है। आप असत्य–सम्भाषण, चोरी या धोखा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि यह नैतिकता के नियमों के विरुद्ध है। जो उचित है वही करें। यदि आपका असत्य–सम्भाषण किसी को लाभ पहुँचा सकता है, तो भी आप असत्य नहीं बोल सकते, क्योंकि यह नैतिक रूप से अनुचित है। किसी कृत्य की नैतिकता नियम आधारित होती है, जिसे 'दायित्व' भी कहते हैं। हम एक और उदाहरण लेते हैं, आप अपने कार्यालय–सहकर्मियों के साथ किसी प्रोजेक्ट पर कार्य कर रहे हैं, और आपने बहुत अधिक योगदान नहीं दिया है। आपके अधिकारी ने आपको प्रोजेक्ट की प्रस्तुति के लिए कहा। आप जानते हैं कि आपके सहकर्मी प्रस्तुति के समय उपस्थित नहीं होंगे। इसलिए आप प्रोजेक्ट का अधिकतर श्रेय स्वयं लेने का निश्चय करते हैं, क्योंकि आपको पदोन्नति की आवश्यकता है। कर्तव्यशास्त्री कहेंगे कि आपने अनुचित किया है। किसी भी परिस्थिति में असत्य–सम्भाषण अनुचित है। असत्य–सम्भाषण से आपने नैतिक नियम का उल्लंघन किया है, अतः यह कृत्य अनुचित है।

दायित्व और कर्तव्यों का सभी स्थितियों से निरपेक्ष रूप में पालन किया जाना चाहिए। इसे समझने के लिए एक और उदाहरण लेते हैं, आप न्यायाधीश हैं और आपकी अदालत में एक मुकदमा आता है, जिसमें आपको एक व्यक्ति (जो कभी आपका मित्र था लेकिन उसने आपको धोखा दिया था) के किसी कार्य के सम्बन्ध में निर्णय करना है। उस व्यक्ति को दोषसिद्ध करके आपके पास बदला लेने का अवसर है। लेकिन आपको अपनी उस व्यक्ति के सम्बन्ध में पुरानी समस्याओं के आधार पर निर्णय नहीं लेना चाहिए। न्यायाधीश के रूप में आपका दायित्व सत्य को सामने लाने का है। अपनी शक्ति का प्रयोग करके अपने मित्र को क्षति पहुँचाने पर, न्यायाधीश के रूप में आपका कर्तव्य छला जायेगा।

बोध प्रश्न I

टिप्पणी: क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) कर्तव्यपरक–नीतिशास्त्र या परिणाम–निरपेक्ष नीतिशास्त्र क्या है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

2) क्या परिणामवाद और कर्तव्यशास्त्र के मध्य कोई अन्तर है? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

3) क्या कर्तव्यशास्त्र और कर्तव्य और दायित्व से कोई सम्बन्ध रखता है? यदि हाँ, तो संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

7.3 मानकीय नीतिशास्त्र और कर्तव्यशास्त्र

मानकीय नीतिशास्त्र नीति दर्शन का अंग है, जोकि उचित या अनुचित कृत्य क्या है, पर चर्चा करता है। मानकीय नीतिशास्त्र मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जाता है, कर्तव्यशास्त्र और प्रयोजनवादी सिद्धान्त। इनमें से प्रथम, कृत्य को निम्न करने के लिए मूल्यों का सहारा नहीं लेता, जबकि बाद वाला लेता है। मानकीय नीतिशास्त्र को समझने के लिए अधिकांश दार्शनिक अधि–नीतिशास्त्र और अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र में भेद करते हैं। अधि नीतिशास्त्र नैतिक भाषा और नैतिक तथ्यों के अर्थ और परिभाषा का अध्ययन है, जबकि अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्र हमारी व्यावहारिक समस्याओं के क्षेत्र में नैतिक सिद्धान्तों के प्रयोग का अध्ययन है।

7.4 कर्तव्यशास्त्र के विविध सिद्धान्त

यह भलीभांति स्पष्ट हो गया है कि कर्तव्यशास्त्र परिणामवाद और उसके सिद्धान्तों के विरुद्ध है। कर्तव्यशास्त्री के लिए, जो भी नैतिकतः निषिद्ध है वह स्वीकार्य नहीं हो सकता, फिर चाहे इसके परिणाम कितने भी लाभकारी या उपयोगी हों। कोई कृत्य किसी नैतिक नियम के संगत होना चाहिए, उसके असंगत नहीं। सभी कर्तव्यशास्त्री स्वीकारते हैं कि 'शुभ' या 'शुभत्व' संसार का वस्तुनिष्ठ गुण है और नैतिक कर्ता के पास इसे पहचानने की सामर्थ्य होनी चाहिए और परिणाम–निरपेक्ष होकर नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

कर्तव्यपरक सिद्धान्तों को मोटे तौर पर दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः क्रिया कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र और नियम कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र। क्रिया–कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र वैयक्तिक कृत्यों और उनकी परिस्थितियों (सन्दर्भों) को ध्यान में रखते हुए कर्तव्यपरक नियमों का अनुप्रयोग करता है। नियम–कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र वैयक्तिक कृत्य या उसकी परिस्थितियों (सन्दर्भों) पर विचार किये बिना सार्वभौमिक रूप से नैतिक नियमों का अनुप्रयोग करता है। उदाहरणार्थ, क्रिया–कर्तव्यशास्त्र इस पर विचार करेगा

कि क्या जॉन का स्मिथ की हत्या करना अनुचित था या नहीं, नियम–कर्तव्यशास्त्र कहेगा कि हत्या करना अनुचित है।

कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के प्रख्यात समर्थक इमानुएल काण्ट थे। उनके नीति–दर्शन ने आधुनिक नीति–दर्शन पर गहरा प्रभाव डाला।

7.5 इमानुएल काण्ट (1724–1804)

इमानुएल काण्ट पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दार्शनिक हैं। ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा, नीति दर्शन, सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी उनके विचार व्यापकरूप से ख्यात और चर्चा के विषय रहे हैं। उनके महत्वपूर्ण कार्य, *क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन, क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन, क्रिटिक ऑफ जजमेंट* और *ग्राउन्डवर्क फोर दि मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स* हैं।

7.6 काण्ट का कर्तव्यपरक या परिणाम–निरपेक्ष नीति–दर्शन

काण्ट के अनुसार, आपके कृत्यों का नैतिक मूल्य केवल तभी है, जब वे आपके कर्तव्य या दायित्व से मेल खाते हैं और कर्तव्य कर्तव्य के लिए किया जाना चाहिए। काण्ट की मान्यता है कि नैतिक कृत्य सार्वभौमिक नैतिक संहिताओं/नियमों जैसेकि असत्य मत बोलो, धोखा मत दो आदि, के परिणाम होने चाहिए। व्यक्तियों को अपने नियमों का पालन करना चहिए और अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। अनेक लोग इसे अन्तर्प्रज्ञा स्वरूप मानते हैं, जैसे कि हम अन्तर्तम में जानते हैं कि क्या नैतिक है या क्या अनैतिक है। हम जानते हैं कि हमें असत्य नहीं बोलना चाहिए या धोखा नहीं देना चाहिए या किसी की हत्या नहीं करनी चाहिए। लेकिन काण्ट कहते हैं, कि मुद्दा यही समाप्त नहीं होता, यह यहाँ प्रारम्भ होता है क्योंकि हमें स्वयं के लिए कोई अपवाद नहीं बनाना चाहिए।

नैतिक रूप से अच्छा होने के लिए आपको कुछ विशिष्ट नियमों का अनुसरण करना पड़ता है। कर्तव्यशास्त्र की सलाह है कि सार्वभौमिक नैतिक नियमों की अवहेलना नहीं करना चाहिए, काण्ट कहते हैं कि धर्म और नैतिकता एक–दूसरे से संगत नहीं हैं, और उचित एवं अनुचित के मध्य भेद करने के लिए हमें 'तर्कशक्ति' या मानवीय बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। काण्ट के अनुसार नैतिकता स्थिर है। उन्होंने दो प्रकार के कृत्यों के मध्य अन्तर किया हैः

वह कृत्य जो हमें नैतिकतः करना चाहिए,

वह कृत्य जो हम बिना किसी नैतिक तर्कशक्ति/बुद्धि, संहिता के करते हैं।

7.7 सापेक्ष आदेश

इसे समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं; यदि आपको किसी परीक्षा को उत्तीर्ण करने की इच्छा है, तो आपको पढ़ाई 'करनी चाहिए'। यदि आप धनवान होना चाहते हैं, तो आपको कठोर परिश्रम आरम्भ कर देना चाहिए। काण्ट इन्हें सापेक्ष आदेश कहता है। ये कुछ विशिष्ट आदेश हैं जिनका पालन करना चाहिए, यदि आप यह कुछ पाने की इच्छा रखते हैं। दृष्टान्ततः, यदि आप भूखे हैं और अपनी भूख से छुटकारा चाहते हैं तो आपको कठोर परिश्रम की आवश्यकता है।

आम भाषा में आदेश निर्देश को संदर्भित करते हैं, वे बतलाते हैं कि कैसे कोई कार्य करना चाहिए। काण्ट सापेक्ष और निरपेक्ष आदेश में अन्तर करते हैं। सापेक्ष आदेश उन नियमों/आज्ञाओं/निर्देशों को संदर्भित करते हैं जो कहते हैं कि यदि कुछ पाना चाहते हैं तो उसके लिए क्या करना चाहिए। दृष्टान्ततः, यदि कोई धनवान होना चाहता है, तो सापेक्ष आदेश उससे कहेगा कि नौकरी प्राप्त करो या कठोर परिश्रम करो। यदि आप अच्छे अंक चाहते हो, तो अध्ययन करो। सापेक्ष आदेश आपसे कहेगा या निर्देश देगा कि यह करो। अतः यह उन लोगों पर लागू होता है जो कोई लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं, यदि आप अच्छे अंक प्राप्त नहीं करना चाहते या धनवान नहीं होना चाहते, आपको इन सापेक्ष आदेशों को मानने की कतई आवश्यकता नहीं है। इसलिए जैसाकि नाम सुझाता है ये अपने स्वरूप में सापेक्ष होते हैं। नैतिकता निरपेक्ष आदेश के क्षेत्र में आती है, न कि सापेक्ष आदेश के। आधुनिक कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का दर्शन काण्ट ने अपने निरपेक्ष आदेश की अवधारणा के माध्यम से दिया।

7.8 निरपेक्ष आदेश

काण्ट के लिए, निरपेक्ष आदेश वे आज्ञाएं हैं जिन्हें अपनी इच्छाओं से निरपेक्ष रूप में 'पालन करना आवश्यक है'। ऐसा इसलिए क्योंकि नैतिक दायित्व मानवीय बुद्धि या व्यावहारिक बुद्धि से निगमित होते हैं। निरपेक्ष आदेश हमारे नैतिक दायित्व हैं और उनका स्थिति–निरपेक्ष रूप में अनुसरण किया जाना चाहिए। काण्ट के अनुसार, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप नैतिक होना चाहते हैं या नहीं, आपको निरपेक्ष आदेशों की आज्ञाओं का अनुसरण करना पड़ता है। वे आपकी आकांक्षाओं और इच्छाओं से स्वतन्त्र हैं।

उनके अनुसार, आपको सदैव उचित और अनुचित क्या है, जानने के लिए धर्म की आवश्यकता नहीं होती, जब आप अपनी 'बुद्धि' मात्र के उपयोग से यह कार्य कर सकते हैं। उन्होंने इन आदेशों के तीन सूत्र दिए, प्रथम के अनुसार,

"उस सूत्र के अनुसार कार्य करो जिसके बारे में तत्क्षण आप असंगताओं से रहित सार्वभौमिक विधि बनाने का संकल्प कर सकें।"

प्रथम सूत्र सार्वभौमिकता से सम्बन्ध रखता है, आपका कृत्य और उसका स्वरूप सार्वभौमिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। सूत्र पद नियम या सिद्धान्त (किस तरह कार्य किया जाना चाहिए) को, जबकि सार्वभौमिक नैतिक विधि उस कृत्य को संदर्भित करती है जो समान परिस्थिति में किया जाना चाहिए। अतः, कार्य करने से पूर्व, यह सोचना चाहिए कि आपके कार्य का क्या सूत्र है? दूसरे शब्दों में, मेरे किसी विशिष्ट ढंग से कार्य करने के पीछे क्या कोई सामान्य नियम है।

इसे स्पष्ट तौर पर समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए, आपने परीक्षा में कम अंक प्राप्त किए और आपकी मां ने आपसे पूछा कि आपने परीक्षा कैसा प्रदर्शन किया। आपने असत्य बोला कि आपने अच्छा प्रदर्शन किया है। अब, एक बाधा यह है कि अंकपत्र पर मां के हस्ताक्षर की आवश्यकता है। आप जानते हैं कि मां अपने काम पर जाने से पहले कई कागजातों और चौकों पर हस्ताक्षर करती हैं, आप अपना अंकपत्र उन कागजातों और चौकों के बीच में रख देते हैं। अवश्य ही यह माँ से सामना करने से बचने के लिए है, क्योंकि आपने पूर्व में माँ से अपने अंकों के बारे में

असत्य बोला है। आश्चर्यजनक रूप से, जब आप वापस आते हैं, पाते हैं कि आपके अंकपत्र पर हस्ताक्षर हो गये हैं।

आपकी मां जल्दी में थी और यह देख न सकीं की कागजों के बीच में आपका अंकपत्र भी था। आपने अपनी मां से असत्य बोला और उन्हें धोखा भी दिया है। यह कृत्य नैतिकतः अनुचित था और इस कृत्य (असत्य बोलने और धोखा देने) को करने से, आपने असत्य–सम्भाषण और धोखा देने को सार्वभौमिक बना दिया है। और आपने यह मिसाल बना दी कि प्रत्येक व्यक्ति को धोखा देना चाहिए और असत्य बोलना चाहिए। यदि आप यह करने के योग्य हैं, तो प्रत्येक यह करने के योग्य होना चाहिए। इसलिए काण्ट का मानना है कि आप अपने कार्य का अपवाद नहीं बना सकते हैं।

नैतिक नियम किसी पर भी और सबके लिए लागू होते हैं। इसे समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। आपका भाई दिवालिया है और वह आपके निवास में छिपा है। आप मामले की गम्भीरता को समझते हैं और अपने भाई से अपने निवास पर सुरक्षित महसूस करने को कहते हैं। इसी बीच आपको ज्ञात होता है कि पुलिस उसकी तलाश में है और पुलिस ने तलाशी अभियान शुरु कर दिया है। कुछ समय पश्चात् आपके घर की घंटी बजती है, आशानुकूल पुलिस आई थी। यह जानकर कि आप उसकी बहिन हैं, पुलिस ने आपसे सम्पर्क करने का विचार किया। आपने पुलिस से असत्य बोला कि आपका भाई आपके निवास पर नहीं है। पुलिस के आने का अनुमान कर आपका भाई भयभीत हो गया और उसने घर से भागने का निश्चय किया और भागा। कुछ क्षण पश्चात् पुलिस ने उसे देखा और पकड़ लिया और कारागार में बन्द कर दिया।

अब काण्ट के अनुसार, आप अपने भाई की परेशानी के लिए उत्तरदायी हैं। क्योंकि यह आपके असत्य बोलन से आरम्भ हुआ, और घटित हुआ। यदि आपने पुलिस को सत्य बताया होता, तब आपका भाई अपने कृत्य के लिए पूर्णतः उत्तरदायी होता। आप उत्तर देने से मना कर सकती थी; आप विषय बदल सकती थीं। आपने असत्य बोलकर सार्वभौमिक नैतिक नियम का उल्लंघन किया है।

काण्ट का दूसरा सूत्र इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि मनुष्य के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिए। उनके शब्दों में,

"इस तरह कृत्य करो कि मानवता को, चाहे अपने लिए या अन्यों के लिए, साध्य के रूप में व्यवहरित करो, न कि मात्र साधन के रूप में।"

काण्ट के मत में हम वस्तुओं को सदैव साधन के रूप में प्रयोग करते हैं। पेन का उपयोग लिखने के लिए हो सकता है, अतः पेन कुछ लिखने का साधन मात्र है। पेन लिखने के साध्य को सिद्ध करने के कारण साधन हुआ। हम स्याही खत्म हो जाने पर पेन फेंक देते हैं, क्योंकि अब यह पेन आपके साध्य को सिद्ध नहीं कर सकता। काण्ट कहते हैं वस्तुओं का इस तरह उपयोग किया जा सकता है, पर मनुष्यों का नहीं। मनुष्य 'स्वयं में साध्य' है। किसी भी मनुष्य को किसी उपयोग के लिए वस्तु की तरह नहीं व्यवहरित किया जा सकता। इसके विपरीत, मनुष्य स्वयं में साध्य (स्वतः साध्य) है। मनुष्य स्वयं के लिए और 'स्वयं में' अस्तित्व रखता है।

काण्ट ने यह कभी नहीं कहा कि हम एक–दूसरे को साधन के रूप में उपयोग नहीं करते हैं। हम मनुष्य हैं और एक–दूसरे पर निर्भर हैं, हम एक–दूसरे पर भरोसा करते हैं। उदाहरण के लिए, आप भोजन में मां के पाक–कौशल्य का उपयोग करते हैं,

क्योंकि वह आपके लिए खाना पकाती हैं। अपने पिता का धन ट्यूशन शुल्क के लिए उपयोग करना। लेकिन हमें एक–दूसरे को साधन मात्र के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए। हम मनुष्य हैं, बौद्धिक हैं। हमें अन्यों को अपने लाभ के लिए नहीं देखना चाहिए। जब अपने किसी साध्य की पूर्ति के लिए किसी व्यक्ति को साधन के रूप में व्यवहरित करते हैं, हम उस व्यक्ति की इच्छा, स्वतन्त्रता, प्रज्ञा और तर्क–बुद्धि का अतिक्रमण करते हैं। यदि आप ऐसा करते हैं, तो आप काण्ट द्वारा बताये गये द्वितीय सूत्र या आदेश का अतिक्रमण करते हैं। नैतिक सत्य सार्वभौमिक हैं और इसके लिए आपको किसी ईश्वर के शासन की आवश्यकता नहीं है।

निरपेक्ष आदेश का अन्तिम और तृतीय सूत्र कहता है,

"उस सूत्र के अनुसार कार्य करो कि आप सार्वभौमिक विधि के विधायक बन सको"

काण्ट यहाँ स्मरण करवाते हैं कि हर उस क्षण जब हम कार्य करते हैं, हम कृत्य और कार्य करने के प्रत्यय और प्रकृति में योगदान देते हैं। हम इसे सामान्य बनाते हैं और हमारे समक्ष सार्वभौमिक नैतिक विधि या नियम के अनुसार कार्य करने का विकल्प सदैव होता है। काण्ट का नीति दर्शन 'संकल्प स्वातन्त्र्य' पर आधारित है। आपके कृत्य सार्वभौमिकता रखने चाहिए, वे स्वयं में साध्य और स्वायत्त होने चाहिए। काण्ट के अनुसार, यदि आप अपने साथी को भावनात्मक, शारीरिक, मानसिक धोखा देते हैं और बहुत आसानी से इस धोखे को उससे छिपा ले जाते हैं। तब आप 'असत्य बोलने' और 'धोखा देने' के कार्य को सार्वभौमिक बनाते हैं। तब सबके द्वारा यह कार्य करने पर आपको असुविधा नहीं होनी चाहिए।

काण्ट यह देखकर आश्चर्यचकित थे कि लोग किस हद तक धर्मांध हैं। उन्होंने सोचा कि यह वह समय है जब लोगों को अपने धार्मिक विश्वासों को जला देना चाहिए, ईश्वर को शुभ के उच्चतम अभिभावक के रूप में देखना बंद कर देना चाहिए। अतः धर्म की प्रभुसत्ता को तर्कबुद्धि से स्थानान्तरित कर देना चाहिए। वे कहते हैं कि सभी धर्मों में यह अन्तर्निहित है कि कैसे नैतिक जीवन जीना चाहिए। इसलिए उन्होंने निरपेक्ष आदेश की अवधारणा प्रस्तुत की जिसे प्रथमतः उनकी पुस्तक *ग्राउन्डवर्क फॉर दि मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स* में वर्णित किया गया। निरपेक्ष आदेश के अनुसार, किसी व्यक्ति को उस सूत्र के अनुसार कार्य करना चाहिए जिसे उसी समय सार्वभौमिक विधि या नियम बनाया जा सके। इसका अधिकांश धर्म अभिभाषण करते हैं, जैसे 'असत्य मत बोलो', 'धोखा मत दो', 'कार्य करो जिसे पूर्ण करने में समर्थ हो' आदि कथन। कोई भी धर्म मनुष्य का साधनरूप में उपयोग करने की शिक्षा नहीं देता।

ये आदेश 'दर्पण' हैं, जो बताता है कि कैसे कार्य करना चाहिए। यह आपका बौद्धिक आत्म है। शुभ करने का संकल्प 'शुभ संकल्प या शुभेच्छा' कहलाता है। शुभ संकल्प की अवधारणा को समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। आप बस का इंतजार कर रहे हैं और देखते हैं कि एक महिला का पर्स सड़क पर गिर गया है। आप यह देख सकते हैं क्योंकि अपने पर्स से मोबाइल निकालते समय उसका पर्स सड़क पर गिर गया था। वृहद् बिन्दु यह है कि आप इस स्थिति में क्या करेंगे? इसलिए आपने पर्स उठाने और उस महिला को देने का निश्चय किया। आपने एक अजनबी की सहायता क्यों की? आपने यह इसलिए किया क्योंकि आप उस महिला की नजरों में अच्छा दिखना चाहते थे, आपने यह इसलिए किया क्योंकि कुछ व्यक्ति यह देख पा रहे थे। इसलिए आपने सहायता की क्योंकि आप अन्य लोगों के मूल्यांकन का पात्र नहीं बनना चाहते थे।

काण्ट के अनुसार, इस तरह के कृत्य शुभ संकल्प से प्रेरित नहीं हैं। शुभ संकल्प के अन्तर्गत किये जाने वाले कृत्य अपने आप में शुभ हैं और वे किसी और हेतु या बदले में कुछ पाने हेतु नहीं किये जाते। शुभ संकल्प वह है जो आप अपने नैतिक तर्कबुद्धि और प्रज्ञा के अनुसार करते हैं। आपको दूसरों के कथन, ईश्वर और धर्म के कथन के अनुसार कार्य नहीं करना चाहिए। आपको नैतिक नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए। नैतिक नियम आपकी प्रज्ञा और नैतिक तर्कबुद्धि से निःसृत हैं।

7.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने मानकीय नीतिशास्त्र के विस्तृत क्षेत्र को जानने का प्रयास किया, यहाँ हमने यह समझने का प्रयास किया कि कर्तव्यपरक नीतिदर्शन का मानकीय नीतिशास्त्र के विस्तृत क्षेत्र में क्या स्थान है। हमने यह समझने का प्रयास किया कि नैतिक आदेश क्या हैं और यह भी कि सापेक्ष और निरपेक्ष आदेश के मध्य क्या भेद है। यह सब इन प्रश्नों के बोध के लिए था कि हम कैसे अच्छे बन सकते हैं? और कैसे नैतिक जीवन के रास्ते पर प्रशस्त हो सकते हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी: क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) इमानुएल काण्ट कौन थे? क्या वे एक नीति दार्शनिक थे?

....

....

....

....

....

2) निरपेक्ष आदेश और सापेक्ष आदेश में क्या अन्तर है?

....

....

....

....

....

3) नैतिक नियमों के अनुसार कार्य करने की हमें क्या आवश्यकता है?

....

....

....

....

....

....

7.10 कुंजी–शब्द

कर्तव्यशास्त्र : 'डिऑन्टोलोजी' पद ग्रीक पदों 'डिऑन', जो दायित्व को संदर्भित करता है और 'लोगोस', जो विज्ञान को संदर्भित करता है, के योग से बना है। कर्तव्यपरक सिद्धान्त का विचारणीय विषय लोगों के कृत्य हैं, न कि उन कृत्यों के परिणाम।

निरपेक्ष आदेश : निरपेक्ष आदेश नैतिक दायित्व हैं और वे परिस्थिति–निरपेक्ष पालनीय हैं।

सापेक्ष आदेश : सापेक्ष आदेश उन नियमों/आदेशों/निर्देशों को संदर्भित करते हैं जो बताते हैं कि यदि हम कुछ इच्छित करते हैं, तो हमें क्या करना चाहिए।

शुभेच्छा या शुभ संकल्प : शुभ कृत्य करने का संकल्प।

7.11 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

काण्ट, इमानुएल. *ग्राउन्डवर्क फॉर दि मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स.* ट्रांस्लेटिड बाई पॉल ग्वायर एण्ड एलेन वुड. न्यू यॉर्कः कम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998.

काण्ट, इमानुएल. *क्रिटीक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन.* ट्रांस्लेटिड बाई मेरी ग्रेगर. कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015.

पॉडकास्ट एवं ऑनलाइन संदर्भ

https://philosophynow-org/podcasts/The_Hidden_World_of_Immanuel_Kant

https://podcasts-oÛ-ac-uk/series/kants&critique&pure&reason

https://www-bbc-co-uk/programmes/b0952zl3

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) डिऑन्टोलोजी (कर्तव्यशास्त्र) पद ग्रीक पदों डिऑन और लॉजिक से बना है, जो क्रमशः कर्तव्य या दायित्व और विज्ञान को संदर्भित करते हैं। यह विचारधारा दर्शन में कर्तव्य और मानवीय आचरण/कृत्य की नैतिकता के मध्य सम्बन्ध को महत्ता प्रदान करती है। कोई कृत्य नैतिकतः शुभ है क्योंकि यह स्वयं में शुभ है; यह किसी नैतिक नियम के अनुसार सम्पादित किया जाता है।

2) परिणामवाद और कर्तव्यशास्त्र मानकीय नीतिशास्त्र के अन्तर्गत दो भिन्न सिद्धान्त हैं। एक ओर जहाँ पहला कहता है कि किसी कार्य की नैतिकता उसके परिणाम को देखकर निश्चित की जानी चाहिए और वहीं बाद वाला, मानवीय आचरण के विश्लेषण में नैतिक नियमों, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के बारे में चर्चा करता है।

3) हाँ, कर्तव्यशास्त्र का कर्तव्यों और दायित्वों के साथ सम्बन्ध है, क्योंकि इसका मानना है कि यदि कोई व्यक्ति कर्तव्यों और दायित्वों के अनुसार कार्य करेगा (संक्षेप में यदि वह नैतिक नियम का पालन करेगा), तो वह कार्य प्रकृति में शुभ या अच्छा होगा।

बोध प्रश्न II

1) इमानुएल काण्ट जर्मन दार्शनिक थे। हाँ, उन्हें नीति दार्शनिक के तौर पर भी जाना जाता है। ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा के अलावा उन्होंने नीति दर्शन पर पर्याप्त लेखन किया है। वास्तव में, कर्तव्यशास्त्र उनके ही कारण स्वीकृत है।

2) हाँ, निरपेक्ष आदेश और सापेक्ष आदेश में अन्तर है। पूर्ववर्ती सार्वभौमिक निरपेक्ष कृत्यों से सम्बन्ध रखता है, जबकि पश्चातवर्ती उन विशिष्ट लक्ष्यों से जिन्हें आप अपने लिए तय करते हैं, यदि आप कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको उन निर्देशों का पालन करना होता है।

3) हमें नैतिक नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए क्योंकि ये प्रकृति में सार्वभौमिक हैं, यह शुभ को धारण करता है और उचित कृत्यों के बारे में चर्चा करता है।

इकाई 8 परिणामवादी नीतिशास्त्रः जे. एस. मिल*

रूपेरखा

8.0 उद्देश्य

8.1 परिचय

8.2 परिणामवाद

8.3 परिणामवाद के प्रारूप

8.4 जे. एस. मिल का उपयोगितावाद

8.5 सारांश

8.6 कुंजी शब्द

8.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम निम्नलिखित मुद्दों की चर्चा करेंगे,

- व्यक्ति को किस तरह कर्म करने चाहिए और किसी कर्म को नैतिक या अनैतिक बनाने वाला तत्व क्या है, प्रश्नों के उत्तर में प्रस्तुत तर्क,
- परिणामवाद क्या है और परिणामवाद के विभिन्न प्रारूपों की व्याख्या,
- शास्त्रीय परिणामवाद अथवा जॉन स्टुअर्ट मिल के उपयोगितावाद पर विशद वर्णन।

8.1 परिचय

नैतिक दर्शन का केन्द्रीय प्रश्न यह है कि व्यक्ति का आचरण कैसे होना चाहिए। जीवन के प्रत्येक क्षण में हम ऐसी परिस्थितियों का सामना करते रहते हैं जबकि हमें यह निर्णय लेना होता है कि इस परिस्थिति में नैतिक रूप से कैसा आचरण उचित है। वास्तव में नियामक नीतिशास्त्र नैतिक आचरण के मानकों की खोज करता है। हम प्रायः शुभ अथवा अशुभ क्या है और जीवन जीने का कौन सा ढ़ंग नैतिक रूप से उचित अथवा अनुचित है जैसे प्रश्नों के सम्बन्ध में नियामक निर्णय लेते हैं। नैतिक व्यवहार को समझने के लिये विभिन्न सिद्धान्तों का विकास किया गया है। विभिन्न सिद्धान्त नैतिक कर्म के संबंध में विभिन्न प्रकार के नियमों अथवा मानकों को प्रस्तुत करते हैं। नियामक नीतिशास्त्र मूलतः दो विस्तृत श्रेणियों में विभाजित है; कर्तव्यवादी और उद्देश्यवादी। कर्तव्यवादी सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य उन नियमों को जानना है जो मानवीय आचरण का पथ–निर्देशन करते हैं, जबकि उद्देश्यवादी सिद्धान्त कुछ विशिष्ट कर्मों का मूल्य निर्धारित करते हैं और उन मूल्यों को साध्य के रूप में दर्शाते हैं। कर्तव्यवादी दृष्टिकोण कर्तव्य को उन नियमों के अनुसरण के अनुसार परिभाषित करता

---

* सुश्री सुरभि उनियाल, विद्यावाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली,
अनुवादक– डॉ. विजय कुमार, दर्शन विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली

है, जबकि प्रयोजनवादी दृष्टिकोण कर्तव्य या कर्म को उस कर्म के परिणाम के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास करता है। इसलिए प्रयोजनवादी दृष्टिकोण को परिणामवाद भी कहा जाता है।

विभिन्न नियामक सिद्धान्तों के अन्तर को समझने के लिए, निष्क्रिय इच्छामृत्यु का उदाहरण लेते हैं। "क्या निष्क्रिय इच्छामृत्यु नैतिक है?" इस प्रश्न के उत्तर के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों ने भिन्न–भिन्न युक्तियां प्रस्तुत कीं। मान लेते हैं कि कर्तव्यवादी और परिणामवादी दोनों इसे नैतिक रूप से अस्वीकार्य मानते हैं, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे समान मुद्दे के लिए समान युक्ति प्रस्तुत कर रहे हैं, बल्कि, उनके तर्क की आधारभूमि अलग–अलग है। चूँकि कर्तव्यवादी का मानना है कि किसी के जीवन को समाप्त करना अन्तर्निहित रूप से गलत है इसलिए उनके अनुसार निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु गलत है फिर चाहे कोई व्यक्ति पीड़ा में ही क्यों न हो। उनके लिए अपने या किसी अन्य के जीवन को समाप्त करना आन्तरिक रूप से गलत है इसलिए यह नैतिक रूप से अस्वीकार्य है। दूसरी ओर, परिणामवादी यही निष्कर्ष भिन्न नैतिक नियमों के आधार पर निकालते हैं। उनके अनुसार, निष्क्रिय इच्छा–मृत्यु नैतिक रूप से इसलिए अस्वीकार्य है क्योंकि इसकी वैधता इसके अनेक दुरूपयोग लेकर आती है अथवा इसकी वैधता सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न नहीं करती है। अतः विभिन्न सिद्धान्त नैतिक कर्म करने के लिये भिन्न–भिन्न नियमों अथवा आदर्शों को प्रस्तुत करते हैं।

यह इकाई परिणामवादी नीतिशास्त्र पर केन्द्रित है। परिणामवादी नीतिशास्त्र का मानना है कि किसी कर्म के उचित एवं अनुचित होने का निर्धारण उस कर्म से उत्पन्न परिणाम के आधार पर किया जाता है। सभी परिणामवादी इन केन्द्रीय विचार को स्वीकार करते हैं कि किसी भी कर्म का नैतिक मूल्यांकन इस तथ्य पर निर्भर करता है कि वह कर्म कितना शुभ परिणाम उत्पन्न करता है और कितने अशुभ परिणाम को दूर करता है। अतः परिणामवादी दृष्टिकोण से, नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जिसका परिणाम शुभ हो।

मिल के उपयोगितावाद की विवेचना की पृष्ठभूमि निर्मित करने के उद्देश्य से इस इकाई का आरम्भ परिणामवाद और उसके विभिन्न प्रकारों के व्याख्या प्रस्तुत करने से होगा।

8.2 परिणामवाद

परिणामवाद नियामक नीतिशास्त्र का वह प्रकार जिसके अनुसार किसी कर्म के लिए नैतिक रूप से महत्वपूर्ण उसके द्वारा उत्पन्न परिणाम है। किसी कर्म या कृत्य के नैतिक मूल्यांकन में उसके द्वारा उत्पन्न परिणाम ही मुख्य रूप से महत्वपूर्ण है। परिणामवादी मानते हैं कि किसी कर्म के बारे में महत्वपूर्ण है कि वह किस तरह का कारणात्मक भेद उत्पन्न करता है, अथवा उससे किस तरह के परिणाम उत्पन्न करने की आशा की जा सकती है। यद्यपि, कभी–कभी हम किसी कृत्य के द्वारा उत्पन्न परिणामों के बारे में निश्चित नहीं होते हैं, तब भी, हम हमारे स्वयं के पूर्वानुभव या अन्यों के अनुभव के आधार पर उस कृत्य के परिणामों का पूर्वानुमान कर सकते हैं। जब हम किसी कृत्य का नैतिक मूल्यांकन करते हैं अथवा हम क्या किया जाये इस पर विचार करते हैं, तब हम उस समग्र अन्तर जो कोई कृत्य पैदा करता है या पैदा कर सकता है, को देखते हैं।

परिणामवाद का मत है कि नैतिकता का उद्देश्य समग्ररूप से शुभ परिणाम उत्पन्न करने वाले कृत्यों को करने में हमारा पथ–निर्देशन करना है। यह सम्भव है कि कौन से कृत्य समग्र शुभ परिणाम लाते हैं, इस पर मतभेद हो सकता है। लेकिन इस विचार पर सहमति है कि हम किसी कृत्य का नैतिक मूल्यांकन; कि वह कृत्य शुभ या अशुभ, उस कृत्य के परिणाम के आधार पर कर सकते हैं। यदि कोई कृत्य समग्र शुभ/कल्याण को उत्पन्न करने में असफल है तो वह कृत्य अशुभ है अन्यथा शुभ। विलियम शॉ वर्णित करते हैं, "गैर–परिणामवादियों से परिणामवादियों के भेद का कारण उनका यह आग्रह है कि शुभ या अशुभ को निश्चित करने के लिए, हमारे कृत्यों के परिणामों से भिन्न अन्य कुछ भी महत्वपूर्ण या आवश्यक नहीं है" (शॉ 2006: 5)।

हम उन कुछ उदाहरणों के बारे में सोच सकते हैं, जिन्हें परिणामवादी दर्शायेंगे। जैसे, ईमानदारी के कृत्य बेइमानी के कृत्यों की अपेक्षा अधिक समग्र शुभ परिणाम उत्पन्न करेंगे। दानशीलता के कृत्य हमेशा शुभ परिणाम उत्पन्न करेंगे। दूसरों को (निर्दोष लोगों को) हानि पहुँचाने की बजाय, हानि न पहुँचाना अधिक शुभ परिणाम उत्पन्न करेगा। इन उदाहरणों से यह समझा जा सकता है कि किसी कृत्य के समस्त परिणाम इसे निर्धारित करते हैं कि कृत्य शुभ है या अशुभ।

हमारे कृत्य या नैतिक कृत्य करने के हमारे निर्णय हमेशा परिणामवादी दृष्टि से प्रभावित होते हैं। निर्दोष को नहीं सताना चाहिए क्योंकि यह कृत्य उस व्यक्ति को सताने से पहले की अवस्था से वंचित कर देगा। जरूरतमंदों की सहायता करनी चाहिए क्योंकि यह उनके जीवन में कल्याण और सुख लायेगा। यह तर्क किया जा सकता है कि यदि हम परिणामवादी दृष्टि से किसी कृत्य का विश्लेषण कर रहे होते हैं, तब हम पाते हैं कि अशुभ या अनुचित कृत्यों का परिणाम अनिवार्यतः अशुभ होता है। लेकिन, हमें किसी कृत्य के नैतिक मूल्यांकन के लिए स्वयं कृत्य पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। हम किसी कृत्य के शुभ या अशुभ का निर्धारण उसके द्वारा उत्पन्न परिणामों से करते हैं।

चलिए सहायता–प्राप्त आत्महत्या (assisted suicide) के सन्दर्भ में विचार करें और देखें कि परिणामवादी किस प्रकार इसके पक्ष या विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हैं। मान लेते हैं कि किसी भी व्यक्ति के अनावश्यक कष्टों को कम से कम किया जाना चाहिए। इस आधार पर, परिणामवाद के ढांचे से, सहायता–प्राप्त आत्महत्या का मुद्दा अधिक दृढ़ जान पड़ता है। अनेक व्यक्तियों का मानना है कि सहायता–प्राप्त आत्महत्या अपने आप में (आंतरिक या तात्विक रूप से) अनुचित है; यह उस स्थिति में भी अनुचित है जबकि व्यक्ति का कष्ट इससे कम होता हो या व्यक्ति स्वयं मृत्यु चाहता हो। यहां तक कि परिणामवादी भी इस बात से सहमत हो सकते हैं कि सहायता–प्राप्त आत्महत्या अनुचित है किन्तु उनका ऐसा मानने का आधार दूसरा होगा। उदाहरण के लिए, उनके विरोध का कारण इसके दुरूपयोग का होना हो सकता है या उनके विरोध का कारण यह भी हो सकता है क्योंकि इसकी वैधता के फलस्वरूप बीमार या अपंग भी अपने आप को दूसरे के ऊपर बोझ समझते हुए इसका वरण करने के लिए प्रोत्साहित हो सकते हैं। ऐसा मानने का तार्किक आधार यह होगा कि सहायता–प्राप्त आत्महत्या की स्वीकृति सर्वाधिक शुभ परिणाम उत्पन्न नहीं करती है।

अधिकांश परिणामवादी तर्क करते हैं कि हमें शुभ परिणामों को बढ़ाना चाहिए। इसके पीछे विचार यह है कि अधिक शुभ उत्पन्न करना कम शुभ उत्पन्न करने से बेहतर है। 'शुभ' का सम्बन्ध केवल कर्म से ही नहीं है बल्कि नियम, नीति, प्रेरणा और मनोवृत्तियों

(संस्कारों) से भी है। प्रायः, शुभ प्रतिफल को प्रसन्नता या सुख या कल्याण के रूप में समझा जाता है। इस अर्थ में कुछ विचारकों के अनुसार ऐपिक्यूरियस सुखवादी नीतिशास्त्र को विकसित करने के कारण आरम्भिक परिणामवादी दार्शनिक है। ऐपिक्यूरियस संगत परिणामों की सीमा आत्मा (स्व) तक सीमित करते हैं। अतः उन्हें अहंवादी परिणामवाद का जनक कहा जाता है। अहंवाद के अनुसार व्यक्ति को शुभ को प्रोत्साहित करना चाहिए, लेकिन शुभ वह है जो स्वयं के लिए शुभ है, न कि सभी के लिए (सामान्य) शुभ। इस प्रकार का परिणामवाद 'अहंवाद' अथवा 'व्यक्ति–विशेष परिणामवाद' के नाम से जाना जाता है। व्यक्तिवादी या व्यक्ति–विशेष परिणामवाद का मानना है कि किसी व्यक्ति को इस बात पर चिंतन करना चाहिए कि किसी कृत्य के परिणाम स्वयं उस पर अथवा उसके किसी समूह जैसे परिवार या मित्रों पर कैसा प्रभाव डालेंगे। इस सम्बन्ध में, नैतिक उचितता या नैतिक शुभ किसी व्यक्ति–विशेष या सीमित समूह पर निर्भर करती है। इसके विपरीत, सार्वभौमिक परिणामवाद मानता है कि किसी व्यक्ति को यह चिंतन करना चाहिए कि किसी कृत्य के परिणामों से सभी सम्मिलित पक्षों पर क्या प्रभाव पड़ता है। नैतिक शुभ सभी प्रभावित व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों पर आधारित है। सभी समानरूप से महत्वपूर्ण हैं, और प्रत्येक को सभी व्यक्तियों (जिन्हें समान माना जाता है) के शुभ या उपयोगिता/कल्याण को समान महत्व देना चाहिए। चूंकि उपयोगितावाद या सार्वभौमिक परिणामवाद मानता है कि गिने गये व्यक्तियों को समान माना जाना चाहिए, तब यह विचारना महत्वपूर्ण है कि किन्हें गिना जाना चाहिए या किन्हें नैतिक प्रस्थिति प्रदान की जानी चाहिए (कि किन पर नैतिक दायरा लागू होता है)। यह जानना रोचक है कि प्रमुख उपयोगितावादी जैसे जेरेमी बेन्थम और पीटर सिंगर का मानना है कि सभी संवेदनग्राही या संज्ञावान (संवेदन के बोध में समर्थ) प्राणियों को नैतिक प्रस्थिति प्रदान की जानी चाहिए, इस आशय में कि नैतिक कर्ता का दायित्व उन सभी प्राणियों के प्रति है जिन्हें सुख और दर्द का अनुभव होता है।

उपयोगितावाद का प्रथम व्यवस्थित रूप जर्मी बेन्थम द्वारा प्रस्तुत किया गया था। शास्त्रीय परिणामवाद (उपयोगितावाद) की मान्यता है कि उपयुक्त नैतिक व्यवहार कभी भी किसी को दुःख नहीं पहुंचाता बल्कि सुख या 'उपयोगिता' को बढ़ाता है। इसलिए, उपयोगितावाद का आधारभूत सिद्धान्त उपयोगिता का सिद्धान्त है अर्थात् नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जो प्रभावित वर्ग के उपयोगिता या कल्याण के सम्बन्ध में सर्वोत्तम समग्र परिणाम उत्पन्न करे। जेरेमी बेन्थम के अनुसार, उचित कृत्य या नीति वह है, 'जो अधिकतम व्यक्तियों के लिए अधिकतम सुख उत्पन्न करे', अर्थात् सभी प्रभावित वर्गों के अधिकतम सदस्यों के लिए सुखप्रद या कल्याणकारी हो। किन्तु प्रश्न उठता है कि हम यह कैसे जाने कि कौन सी वस्तु–स्थिति मूल्यवान है और कौन सी नहीं? उपयोगितावाद कहता है कि सभी संज्ञावान या संवेदनग्राही जीवों का सुख अथवा कल्याण ही मूल्यवान वस्तु है। जेरेमी बेन्थम मानते हैं कि शुभ सुख की अनुभूति या संवेदन और दुःख का अभाव है। जबकि अन्य शास्त्रीय उपयोगितावादियों जैसे कि जे. एस. मिल के अनुसार, शुभ वह है जो मूल्यवान मानसिक अवस्थाओं को सम्पूर्णता में प्रोत्साहित करता है और मानसिक अवस्थाएं बिना सुखप्रद हुए भी मूल्यवान हो सकती हैं। वह उच्च एवं निम्न सुखों के वर्गीकरण को भी स्वीकार करते हैं। (जे. एस मिल के उपयोगितावाद की विशद चर्चा आगामी परिच्छेद में की जायेगी)।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) परिणामवाद क्या है?

....

....

....

....

....

2) उपयोगितावाद को परिभाषित कीजिए। उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

....

....

....

....

....

8.3 परिणामवाद के प्रारूप

परिणामवाद के कई प्रारूप हैं जो इस केन्द्रीय विचार से जुड़े हुए हैं, कि किसी कृत्य या कर्म के शुभ या अशुभ के रूप में मूल्यांकन के लिये सबसे महत्वपूर्ण उस कृत्य का परिणाम है। प्रचलित ढंग से, परिणामवाद के दो मुख्य रूप हैं – कर्म परिणामवाद और नियम परिणामवाद।

कर्म परिणामवाद का मुख्य–विचारणीय विषय वह कृत्य है जो उस कृत्य की नैतिक स्थिति निर्धारित करने के लिए समग्र शुभ या अशुभ परिणाम उत्पन्न करता है।

निमय परिणामवाद का मुख्य विचारणीय विषय वे नियम हैं जिनके अनुप्रयोग से कोई कृत्य समग्र शुभतर परिणाम उत्पन्न करेगा।

कर्म परिणामवाद मानता है कि किसी भी कर्म के उचित या अनुचित होने का निर्धारण उस कर्म की उपयोगिता के मूल्यांकन से किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जो प्रभावित पक्ष के अधिकांश सदस्यों के कल्याण या लाभ सम्मत पूर्णतः सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करता है। जब कभी व्यक्ति के समक्ष कर्मों में चुनाव का अवसर आता है तो उसे कर्म के उसी विकल्प को चुनना चाहिए जो प्रभावित पक्ष के सभी अथवा अधिकतम सदस्यों के लिए सम्भावित सर्वोत्तम परिणाम ले कर आए। अतः कर्म उपयोगितावाद उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर वैकल्पिक कर्म के मूल्यांकन और चुनाव की अग्रलिखित प्रक्रिया का निर्धारण करता हैः विभिन्न वैकल्पिक कर्मों जैसे कि ग1, ग2, ग3 आदि की पहचान करते हैं। फिर उन वैकल्पिक कर्मों के सम्भांवित परिणामों जैसे कि ग1 के परिणाम, ग2 के परिणाम आदि की पहचान करते हैं। कर्म का चुनाव और मूल्यांकन मूलतः उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। कर्म के उचित और अनुचित का निर्णय करने के क्रम में हमें अनेक बातों जैसे कि सभी उपलब्ध कर्मों और उनके परिणामों का ज्ञान होना चाहिए।

फिर प्रत्येक उपलब्ध कर्म का मूल्य निर्धारण किया जाना चाहिए। व्यक्ति को कौन से कर्म से सर्वोत्तम सम्भावित परिणाम मिलेंगे का निर्णय करने हेतु विभिन्न उपलब्ध कर्मों के मध्य तुलना करनी चाहिए। अब चूँकि किसी भी व्यक्ति के सभी सम्भावित विकल्पों का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए यहां व्यक्ति अपने पुराने अनुभवों के आधार पर सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव कर सकता है।

यद्यपि कर्म परिणामवाद प्रथम दृष्टि में बड़ा आकर्षक लगता है किन्तु इसके कुछ समस्या जनक निहितार्थ भी हैं। यदि आप कहते हैं, ''साध्य साधन को न्यायोचित नहीं सिद्ध कर सकता'' तो आप गैर–परिणामवाद को स्वीकार कर रहे होते हैं। ऐसे अनेक कर्म हैं जिन्हें अनेक लोग अनुचित मानते हैं किन्तु परिणामवाद उन्हें बिल्कुल उचित मानता है अथवा बाध्यकारी तक मानता है। मान लीजिए एक चिकित्सक पाँच ऐसे लोगों की चिकिसा कर राह है, जिन्हें जीवन हेतु अंगदान की आवश्यकता है। उसी समय कोई उत्तम स्वास्थ्य और शरीर वाला व्यक्ति सामान्य परीक्षण के लिए चिकित्सक के पास आता है। अचानक से, चिकित्सक सोचता है कि यदि मैं इस स्वस्थ व्यक्ति के अंगों को निकालकर उनका प्रत्यारोपण उन पाँच मरीजों में कर दूँ, तो वे पाँच व्यक्तियों को जीवनदान मिल जायेगा। इस प्रक्रिया में उस स्वस्थ व्यक्ति की मृत्यु हो जायेगा। क्रिया परिणामवाद चिकित्सक के निर्णय के औचित्य को सिद्ध करने में नहीं हिचकिचायेगा। लेकिन सामान्य तौर पर, व्यक्ति इसे औचित्यपूर्ण कृत्य नहीं मानेंगे

कर्म परिणामवाद की समस्या को नियम परिणामवाद की सहायता से हल किया जा सकता है। नियम परिणामवाद व्यक्तिगत कृत्यों पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता है, अपितु उन नियमों या सिद्धान्तों की खोज या रचना करने का प्रयास करता है, जिनसे किसी समाज में अधिकतम लोगों को समग्र शुभ परिणाम प्राप्त हों।

नियम परिणामवाद मानता है कि हमें कोई कृत्य शुभ है या अशुभ इसको उपयोगता के सिद्धान्त से प्राप्त नियमों के आधार पर तय करना चाहिए। इसलिए, यदि हम एक नियम बनाते हैं कि "असत्य सम्भाषण अशुभ या अनुचित है और हमें असत्य सम्भाषण नहीं करना चाहिए" तब नैतिक कर्ता का असत्य सम्भाषण इसलिए नहीं करना चाहिए क्योंकि यह उसका व्यक्तिगत वरीयता (चयन, तरजीह) है बल्कि यह उस नियम पर आधारित है जिसका पालन समाज के समग्र शुभ के लिए करना चाहिए। यह व्यक्तिगत कृत्य के बारे में न होकर नियम या मान्यता के बारे में है जिसका समग्र कल्याण के लिए पालन किया जाना चाहिए। नियम परिणामवाद इसके पालन हेतु दो तरीकों की चर्चा करते हैं,

1) नैतिक कर्ता को भिन्न–भिन्न नियमों का मूल्यांकन किसी विशिष्ट परिस्थिति में करना चाहिए और उस नियम या मान्यता को लागू करना चाहिए जिससे समस्त सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त हों।

2) किसी विशिष्ट परिस्थिति हेतु प्रथम चरणध्तरीके से प्राप्त नियम का पालन व्यक्ति को बिना यह सोचे करना चाहिए कि कोई वैकल्पिक कृत्य इससे बेहतर परिणाम दे सकता है। उदाहरणार्थ, यदि असत्य सम्भाषण अनुचित है, यह नियम है तो व्यक्ति को असत्य सम्भाषण नहीं करना चाहिए, चाहे असत्य सम्भाषण बेहतर परिणाम दे।

इस प्रकार, नियम परिणामवाद के अनुसार, हमें शुभ परिणाम देने वाले व्यक्तिगत कृत्यों को करने के बजाय, उन नियमों का अनुसरण करना चाहिए, जिनके अनुसरण से शुभ परिणाम उत्पन्न हों।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी: क) अपने उत्तर हेतु दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) परिणामवाद के प्रारूप कौन–कौन से हैं?

....

....

....

....

....

2) कर्म परिणामवाद को विस्तार से परिभाषित करें।

....

....

....

....

....

3) नियम परिणामवाद को परिभाषित करें। नियम परिणामवाद में प्रयुक्त दो चरणों को स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

8.4 जे. एस. मिल का उपयोगितावाद

जॉन स्टुअर्ट मिल बेन्थम के अनुसरणकर्ता थे। बेन्थम के कुछ विचारों विशेषकर 'सुख की प्रकृति के सम्बन्ध में' से असहमत होते हुए भी वे बेन्थम के बड़े प्रशंसक थे। बेन्थम का मानना था कि सुखों के मध्य केवल मात्रात्मक अन्तर होता है, न कि गुणात्मक। जबकि मिल सुखों में गुणात्मक अन्तर को भी स्वीकारते हैं। मिल के नीति–दर्शन का विशद वर्णन उनकी पुस्तक *यूटिलिटेरियनिज्म* (1861) में मिलता है। इस पुस्तक का उद्देश्य नैतिकता के आधार के रूप में उपयोगिता सिद्धान्त के औचित्य को सिद्ध करना है। इस सिद्धान्त के अनुसार, कर्म उसी अनुपात में शुभ या उचित हैं जिस अनुपात में वे समग्र मानवीय सुख को बढ़ाते हैं। इसलिए, मिल कर्मों के परिणामों पर बल देते हैं, न कि अधिकारों या नैतिक सम्वेदनाओं पर।

मिल यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि नैतिकता का लक्ष्य अस्तित्व की विशिष्ट अवस्था को उत्पन्न करना है। मिल यह तर्क करने का प्रयास करते हैं कि शुभ और अशुभ के रूप में कर्मों का विशेषीकरण पर्याप्त नहीं है, अपितु हमें उस (या

उन) तत्वों को खोजने की आवश्यकता है, जो कर्मों को नैतिक प्रकृति (शुभ और अशुभय उचित और अनुचित) प्रदान करते हैं। लोग मिल से इस बात में सहमत नहीं हो सकते हैं कि क्या है या क्या होना चाहिए, जिसके आधार पर नैतिक कर्मों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। मिल कहते हैं कि कर्मों का सारतत्व उपयोगिता है, जोकि मानवीय अस्तित्व के लिए आवश्यक है और किसी कर्म को नैतिक मूल्यांकन के योग्य बनाता है।

इस भ्रान्ति के विरुद्ध कि उपयोगिता सुख की विरोधी है, मिल उपयोगिता को सुख के रूप में और दर्द या दुःख के अभाव के रूप में परिभाषित करने का प्रयास करते हैं। इस तरीके से उपयोगिता के सिद्धान्तो को अधिकतम सुख (प्रसन्नता या आनन्द) का सिद्धान्त भी कहा जा सकता है। इस सिद्धान्त का मानना है कि "कोई कृत्य या कर्म उस अनुपात में उचित हैं जिसमें वे प्रसन्नता को बढ़ाते हैं, और उस अनुपात में अनुचित जिसमें वे प्रसन्नता के व्युत्क्रम को उत्पन्न करते हैं। प्रसन्नता का निहितार्थ है सुख, और दुःख का अभाव, और अप्रसन्नता का निहितार्थ है दर्द, और सुख का अभाव" (मिल 1996ः 210)। इस दृष्टिकोण के अनुसार, दर्द या दुःख का परिहार और सुख की खोज स्वतः साध्य है और स्वयं में वांछित है।

मिल के विरुद्ध सामान्य आपत्ति यह है कि केवल सुख को जीवन का लक्ष्य स्वीकारने का तात्पर्य है जीवन के अर्थ को सुख में अपचयित कर देना। मिल इसका उत्तर देने के लिए मानवीय सुख और पशुओं के सुख में गुणात्मक भेद करते हैं। वे इस बिन्दु पर बल देते हैं कि मानव अपने उच्चतर क्षमताओं/संकायों के अभ्यास से सुख प्राप्त करता है और उन संकायों के पल्लवन के बिना वे हमेशा असंतुष्ट रहेंगे। अतः, मानव के लिए सुख उसकी उच्चतर संकायों के कार्यों को द्योतित करता है। इस प्रकार, मिल सुख की गुणात्मकता को केन्द्र में रखकर अपने उपयोगितावाद का सूत्रीकरण करते हैं।

वह कहते हैं,

''सुखों के मध्य गुणात्मकता के अन्तर से मेरा क्या तात्पर्य है, अथवा वह क्या है जो एक सुख को दूसरे सुख की तुलना में अधिक मूल्यवान बनाता है, मात्रा में महत के होने के सिवाय, इसका एक ही सम्भावित उत्तर है, केवल सुख के रूप में। दो सुखों में से, यदि कोई एक सुख है जिसको दोनों सुखों का पूर्व में अनुभव करने वाले सभी या उनमें से अधिकतर लोगों के द्वारा, चुनाव हेतु बिना किसी नैतिक बाध्यता के, वरीयता दी जाती है, वही वांछनीय सुख है। यदि उन दोनों में से एक को दोनों से सक्षम तरीके से प्रत्यक्षतः परिचित लोगों द्वारा यह जानते हुए भी कि यह महत असंतोष उत्पन्न करेगा, वरीयता दी जाती है, और वे इसका वरीयता का, परित्याग किसी भी उस सुख की मात्रा के लिए जिसका उपभोग करने में वे समर्थ हैं, नहीं करेंगे, हम वरीय आनन्द को, इसकी तुलना में मात्रा की लघुता स्वीकारते हुए, गुणात्मक उच्चता के कारण के आधार पर औचित्यपूर्ण सिद्ध कर सकते हैं," (मिल 2015ः 122)।

इसके अतिरिक्त मिल विश्वास करते हैं कि किसी नैतिक कृत्य के मूल्यांकन का आदर्श पैमाना इसमें सम्मिलित या इससे प्रभावित सभी व्यक्तियों के सुख का विचारण है, और न कि अकेले कर्ता के स्वयं के सुख का विचारण। इसलिए, किसी को भी अपने सुख को अन्यों के सुख से उच्चतर नहीं मानना चाहिए। मिल लोगों के सुख के मूल्य को मान्यता देने के सन्दर्भ में सभी मनुष्यों के साथ समान व्यवहारय फिर चाहे धनी हो या निर्धन, काला हो या गोरा, का समर्थन करते हैं।

मिल नैतिक कृत्यों को करने हेतु प्रेरणाओं/अभिप्रेरणाओं पर भी बातचीत करते हैं। वह दो प्रकार की प्रेरणाओं का उल्लेख करते हैं– बाह्य एवं आन्तरिक। बाह्य प्रेरणा सामान्य प्रकृति की है, जिसे किसी भी अन्य नैतिक ढांचे से सम्बन्धित किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, घनिष्ठों का दबाव, दैवीय आदेश, या सामाजिक अननुमोदन इत्यादि। दूसरी ओर, जब कोई व्यक्ति किसी परिस्थिति–विशेष का सामना करता है, तो आन्तरिक प्रेरणा उसकी स्वयं की अन्तश्चेतना और आन्तरिक भावना से उद्भूत होती है। मिल के लिए, आन्तरिक प्रेरणा बाह्य प्रेरणा से अधिक प्रभावी है, क्योंकि इसके बीज प्राणीमात्र में उपस्थित हैं। आन्तरिक प्रेरणा से प्राकृतिक नैतिक दृष्टि विकसित होती है और लोग प्राकृतिक रूप से नैतिक बाध्यता का अहसास करते हैं। मिल ने यह दिखाने का प्रयास किया कि उपयोगिता सुख के साहचर्य के साथ मनुष्य के अन्दर ही मजबूत नैतिक आधार बनाती है (मिल 2015: 140–147)।

अतः, मिल तर्क करते हैं कि उपयोगितावाद नैतिक मूल मानवीय प्रकृति, अधिक विशिष्ट तौर पर उनकी सामाजिक प्रकृति में, में ही निहित है। मिल विचारते हैं कि समाज को लोगों में इस नैतिक अभिमुखता को शिक्षा जैसे विभिन्न माध्यमों से मनारोपित और प्रोत्साहित करना चाहिए।

इस तरीके से मिल ने अपनी पुस्तक *युटिलिटेरियनिज्म* में उपयोगिता के नैतिक सिद्धान्त पर तर्क किया है। इस सिद्धान्त की आलोचना के प्रतिउत्तर में मिल ने न केवल जेरेमी बेन्थम के मूलभूत सिद्धान्तों के पक्ष में तर्क किया, अपितु बेन्थम के सिद्धान्तों की संरचना, अर्थ, और अनुप्रयोग में महत्वपूर्ण सुधार भी किये। यद्यपि उच्चतम शुभ की वास्तविकता और प्रकृति के सम्बन्ध में असमाप्य विवादों के कारण नीति–दर्शन की प्रगति सीमित हुई है, फिर भी मिल को प्रातःवेला में ही प्रतीत हो गया था कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात पर सहमत हो सकता है कि मानवीय कृत्यों के परिणाम उनके नैतिक मूल्यों में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) मिल 'प्रथम सिद्धान्त' की अवधारणा से क्या समझते हैं?

....

....

....

....

....

8.5 सारांश

यह इकाई नैतिक दर्शन के एक सिद्धान्त उपयोगितावाद का विवरण प्रस्तुत करती है। उपयोगितावाद वह नियामक नैतिक सिद्धान्त है जो कहता है कि किसी कृत्य की नैतिकता का निर्धारण उसके द्वारा उत्पन्न परिणामों के आधार पर होता है। इसके दो प्रारूप हैं : क्रिया परिणामवाद तथा नियम परिणावाद। क्रिया परिणामवाद उन परिणामवादी सिद्धान्तों को संदर्भित करता है, जिनके अनुसार नैतिक कृत्य वह है जो

कि (पूर्ण अथवा सामान्य) उपयोगिता को अधिकतम के स्तर पर ले जाता है। वहीं, नियम परिणामवाद उन परिणामवादी सिद्धांतों को संदर्भित करता है, जिनके अनुसार नैतिक कृत्य वह है जो उस नियम (नियमावली) के अनुसार होता है जो यदि सामान्य अर्थ में समझे तो, उपयोगिता को अधिकतम (पूर्ण अथवा सामान्य) स्तर पर ले जाए। यह इकाई स्टुअर्ट मिल द्वारा प्रस्तुत उपयोगितावाद का विवरण देती है। मिल उपयोगितावाद का वर्णन अधिकतम सुख सिद्धान्त के रूप में करते हैं। इसके अनुसार, ''कर्म उसी अनुपात में उचित है जिस अनुपात में वह सुख को बढ़ाता है और उस अनुपात में अनुचित है जिसमें सुख के व्युत्क्रम को बढ़ाता है। सुख आनन्द और दुःख या दर्द के अभाव को लक्षित करता है, और दुःख या अप्रसन्नता दर्द और सुख या आनन्द की कमी को लक्षित करती है"। मिल चूँकि गुणात्मक सुख की बात करते है इसलिए उनका सिद्धान्त बेन्थम के मात्रात्मक उपयोगितावाद के विपरीत गुणात्मक उपयोगितावाद के नाम से जाना जाता है।

8.6 कुंजी शब्द

परिणाम : उत्पन्न परिणाम, यहाँ इससे तात्पर्य किसी कर्म से उत्पन्न अन्तिम परिणाम है।

उपयोगिता सिद्धान्त : इसके अनुसार, नैतिक रूप से उचित कार्य वही है जो सभी प्रभावित व्यक्तियों के लिए उपयोगिता अथवा कल्याण से सम्बद्ध सर्वोत्तम समग्र परिणाम उत्पन्न करे।

8.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

ड्राइवर, जूलिया. *कॉन्सिक्वेन्शियलिज्म.* लंदनः राउटलेज, 2011.

जैकब, जॉनाथन. *डाइमेन्शन्स ऑफ मॄरल फिलॉसोफीः एन इन्ट्रोक्शन टु मेटाएथिक्स एण्ड मॉरल साइकोलॉजी.* जर्मनीः ब्लैकवेल पब्लिशिंग, 2002.

मिल, जॉन स्टुअर्ट. "युटिलिटेरियनिज्म", इन मार्क फिलिप (एडि.), *ऑन लिबर्टी, युटिलिटेरियनिज्म एण्ड अदर एस्सेज.* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015.

मिल, जॉन स्टुअर्ट. *युटिलिटेरियनिज्म,* इन जॉन एम. रॉब्सन (एडि.), *कलेक्टिड वर्क्स ऑफ जॉन स्टुअर्ट मिल,* वॉल. 10. टोरन्टोः युनिवर्सिटी प्रेस/ लंदन : राउटलेज एण्ड केगन पॉल, 1969[1861].

मोयर, डीन (एडि.). *द राउटलेज कम्पेनियन टु नाइन्टीन्थ सेन्चुरी फिलॉसोफी.* कनाडाः राउटलेज, 2010.

लेन्डुआ, रस शेफर (एडि.). *एथिकल थ्योरीः एन एन्थोलॉजी.* ऑक्सफोर्डः ब्लैकवेल पब्लिसिंग, 2007.

वेस्ट, हेनरी आर. (एडि.) *द ब्लेकवेल गाइड टु मिल'स यूटिलिटेरियनिज्म.* ऑस्ट्रेलियाः ब्लैकवेल पब्लिशिंग, 2006.

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) परिणामक नियामक नीतिशास्त्र का वह प्रकार है जिसके अनुसार किसी कर्म के लिए नैतिक रूप में महत्वपूर्ण उसके द्वारा उत्पन्न परिणाम हैं। कोई कर्म उचित है या नहीं या करने योग्य है या नहीं इसका निर्धारण उत्पन्न परिणाम पर निर्भर करता है। अधिकांश परिणामवादी मानते हैं कि हमें शुभ परिणामों को बढ़ाने वाले कर्म करने चाहिए। परिणामवाद का सरलतम रूप शास्त्रीय (सुखवादी) उपयोगितावाद है। शास्त्रीय उपयोगितावाद के अनुसार, किसी कर्म के उचित अथवा अनुचित होने का निर्धारण इस तथ्य से होता है कि उस कर्म के फलस्वरूप विश्व में दुःख की अपेक्षा अधिकतम सुख का प्रसार होता है या नहीं।

2) उपयोगितावाद परिणामवाद के एक रूप है जो उपयोगिता के सिद्धान्त को मानता है, अर्थात् नैतिक शुभ कृत्य वह है जो सभी प्रभावित पक्षों की उपयोगिता या कल्याण से सम्बद्ध सर्वोत्तम समग्र परिणामों को उत्पन्न करता है।

   उपयोगितावाद का प्रसिद्ध उदाहरण, ट्रॉली का है। कल्पना कीजिए कि कोई ट्रॉली किसी पटरी पर बढ़ रही है, जिस पर पाँच मजदूर हैं। आप मीलों दूर नियंत्रण कक्ष में हैं, और आप एक स्विच से ट्रॉली को दूसरी पटरी पर ला सकते हैं, जिस पर एक मजदूर है। क्या आप स्विच दबायेंगे? एक व्यक्ति की मृत्यु पाँच की मृत्यु की अपेक्षा ठीक है, तब यदि आपको चुनना पड़े तो आपको स्विच दबाकर मृत्युओं को कम करना चाहिए। यह उपयोगितावादी तर्कणा का एक उदाहरण है।

बोध प्रश्न II

1) दो प्रकार के परिणामवाद हैं; क्रिया परिणामवाद और नियम परिणामवाद।

2) कर्म परिणामवाद मानता है कि किसी भी कर्म के उचित या अनुचित होने का निर्धारण उस कर्म की उपयोगिता के मूल्यांकन से किया जाना चाहिए। इसका अर्थ है कि नैतिक रूप से उचित कर्म वह है जो प्रभावित पक्ष के अधिकांश सदस्यों के कल्याण या लाभ सम्मत पूर्णतः सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करता है। जब कभी व्यक्ति के समक्ष कर्मों में चुनाव का अवसर आता है तो उसे कर्म के उसी विकल्प को चुनना चाहिए जो प्रभावित पक्ष के सभी अथवा अधिकतम सदस्यों के लिए सम्भावित सर्वोत्तम परिणाम ले कर आए। अतः, कर्म उपयोगितावाद उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर वैकल्पिक कर्म के मूल्यांकन और चुनाव हेतु अग्रलिखित प्रक्रिया का निर्धारण करता हैः विभिन्न वैकल्पिक कर्मों जैसे कि ग1, ग2, ग3 आदि की पहचान करते हैं। फिर उन वैकल्पिक कर्मों के सम्भांवित परिणामों जैसे कि ग1 के परिणाम, ग2 के परिणाम आदि की पहचान करते हैं। कर्म का चुनाव और मूल्यांकन मूलतः उपयोगिता सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है। कर्म के उचित और अनुचित का निर्णय करने के क्रम में हमें अनेक बातों जैसे कि सभी उपलब्ध कर्मों और उनके परिणामों का ज्ञान होना चाहिए। फिर प्रत्येक उपलब्ध कर्म का मूल्य निर्धारण किया जाना चाहिए। व्यक्ति को कौन से कर्म से सर्वोत्तम सम्भावित परिणाम मिलेंगे का निर्णय करने हेतु विभिन्न उपलब्ध कर्मों के मध्य तुलना करनी चाहिए। यह प्रतीत होता है कि

किसी भी व्यक्ति के सभी सम्भावित विकल्पों का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए यहां व्यक्ति अपने पुराने अनुभवों के आधार पर सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव कर सकता है।

3) नियम परिणामवाद मानता है कि हमें कोई कृत्य शुभ है या अशुभ इसको उपयोगिता के सिद्धान्त से औचित्य प्राप्त नियमों के आधार पर तय करना चाहिए। कर्ता को उन नियमों के प्रयोग से, जिनका स्वीकरण सर्वोत्तम परिणाम उत्पन्न करता है, निर्णय करना चाहिए कि किसी परिस्थिति में क्या किया जाना चाहिए। प्रश्न यह नहीं है कि कौन–सा कृत्य अधिकतम उपयोगिता उत्पन्न करेगा, बल्कि यह है कि कौन–सा नियम या मान्यता अधिकतम उपयोगिता या कल्याण उत्पन्न करेगा। नियम परिणामवाद में अन्तर्निहित द्वि–चरण प्रक्रिया निम्नवत हैः

   1) नैतिक कर्ता को भिन्न–भिन्न नियमों का मूल्यांकन किसी उपयोगिता के सिद्धान्त के आधार पर करना चाहिए; किसी व्यक्ति को नियमों का मूल्यांकन इस आधार पर करना चाहिए कि किस नियम से सभी प्रभावित पक्षों हेतु समस्त सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त होता है।

   2) किसी परिस्थिति–विशेष में, किसी कृत्य का शुभ और अशुभ के रूप में मूल्यांकन प्रथम चरण में औचित्यपूर्ण सिद्ध नैतिक नियमों को दृष्टिगत रखते हुए करना चाहिए। किसी विशिष्ट परिस्थिति हेतु प्रथम चरण/तरीके से प्राप्त नियम का पालन व्यक्ति को बिना यह सोचे करना चाहिए कि कोई वैकल्पिक कृत्य इससे बेहतर परिणाम दे सकता है।

बोध प्रश्न III

1) मिल ने अपनी पुस्तक *युटिलिटेरियनिज्म* में आद्योपांत "प्रथम सिद्धान्त" की अवधारणा और नैतिकता के मूल की चर्चा की है। इस अवधारणा की सहायता से, मिल कहते हैं कि किसी कृत्य को शुभ या अशुभ के रूप में विशेषित कर देना पर्याप्त नहीं है, यद्यपि, कुछ और होना चाहिए जो इन कृत्यों को नैतिक चरित्र प्रदान करते हैं, और जो इस तथ्य का भी कारण है कि क्यों "शुभ" और "अशुभ" जैसे पद प्रथम स्थान पर प्रतिध्वनित होते हैं। लोग इस बात पर सहमत नहीं हो सकते हैं कि नैतिकता का यह सारभूत सिद्धान्त क्या है, और यह क्यों इतना विशेष है। अतः, उन्होंने, अपनी पुस्तक में इस मूल को पहचानने का प्रयास किया– जिसे उपयोगिता का सिद्धान्त कहते हैं– और फिर यह दिखाया कि क्यों यह नैतिक मूल असाधारण और मानव के रूप में हमारे अस्तित्व के केन्द्र में है।

इकाई 9 नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन*

रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 परिचय

9.2 प्रमुख नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तः एक अवलोकन

9.3 उपयोगितावाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.4 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.5 सद्गुण नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

9.6 सारांश

9.7 कुंजी शब्द

9.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

- प्रमुख नीतिशास्त्रीय (नियामक) सिद्धान्तों, जैसे उपयोगितावाद, कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र तथा सद्गुण नीतिशास्त्र की आधारभूत विषय–वस्तु तथा पूर्वमान्यताओं को समझना,
- नीतिशास्त्र के इन सिद्धान्तों का विश्लेषण करना,
- नीतिशास्त्र के इन सिद्धान्तों का आलोचनात्मक परीक्षण करना।

9.1 परिचय

यह इकाई मुख्य रूप से नियामक नीतिशास्त्र के अभी तक के वर्णित सिद्धान्तों, सद्गुण नीतिशास्त्र, उपयोगितावाद, तथा काण्ट के कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के आलोचनात्मक विश्लेषण पर केन्द्रित होगी। ये सिद्धान्त नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धान्त हैं जिन्होंने कई युगों तक मानव मस्तिष्क पर उनके कार्यों के लिए कारण प्रदान करके अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। हमारे कृत्यों के लिए इन सिद्धान्तों द्वारा दिये गये कार्य–निर्देशक नियम, हमें कुछ प्रश्नों, जैसे क्या सही है और क्या गलत है? किसी विशेष परिस्थिति में यह कैसे निर्धारित किया जाये कि शुभ क्या है और क्या अशुभ?, और, इसी से सम्बन्धित, व्यापक प्रश्न कि समाज में शान्तिपूर्वक जीवन कैसे जिया जाये?, आदि को को समझने में सहायता करते हैं। शान्तिपूर्वक जीवन जीना सीधे इस बात से सम्बन्धित है कि एक व्यक्ति की तरह तथा एक समाज के रूप में अच्छा कैसे बना जाए?

* डॉ. मो. इनामुर रहमान, सहायक प्राध्यापक, दर्शन विभाग, प्रेसीडेन्सी विश्वविद्यालय, कोलकाता,
अनुवादक– सुश्री रिंकी जादवानी, व्याख्याता (दर्शनशास्त्र), मानविकी विभाग, दिल्ली तकनीकि विश्वविद्यालय, दिल्ली

इन सिद्धान्तों पर आलोचनात्मक–प्रतिबिम्बन से हमें एक बेहतर जीवन जीने के लिए कार्य–निर्देशित नियमों को पुनर्निर्मित तथा पुनर्व्यवस्थित करने में सहायता मिलेगी।

9.2 प्रमुख नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तः एक अवलोकन

नीतिशास्त्र के सभी सिद्धान्त इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करते हैंः एक व्यक्ति को एक ऐसी स्थिति में कैसे काम करना चहिए जिस स्थिति में अन्य भी शामिल हों। एक स्वतन्त्र कर्ता के कार्य हमेशा इस नैतिक मूल्यांकन के अधीन रहते हैं कि वह कार्य सही है या गलत/शुभ है या अशुभ। नैतिक सिद्धान्त कार्य– निर्देशक नियम प्रदान करके हमारे कार्यों का निर्धारण करने में सहायता करते हैं। उदाहरणतया हमें उसी प्रकार कृत्य करने चाहिए जिससे समग्र उपयोगिता अधिकतम हो (सामान्य सन्दर्भ में उपयोगितावादी सिद्धान्त)। एक शान्तिपूर्ण समाज की स्थापना के लिए हमारे कृत्यों का नैतिक मूल्यांकन आवश्यक है। उस समाज में, जिसमें अनैतिक या बुरे व्यक्तियों की भरमार होगी, लोगों का जीवन शान्तिपूर्ण नहीं होगा क्योंकि इससे जालसाजी, भ्रष्टाचार, चोरी हत्या आदि अनियन्त्रित हो जायेंगे। व्यक्तिगत तौर पर हमें उन सिद्धान्तों को समझने की जरूरत है जो हमें एक अच्छा व्यक्ति बनाने में सहायता करते हैं। अतः हमें नैतिक सिद्धान्तों को परिभाषित करने तथा समझने की जरूरत है जिससे व्यक्ति के आचरण का मूल्यांकन किया जा सके।

नीतिशास्त्र के एक सिद्धान्त के रूप में उपयोगितावाद यह दृष्टिकोण अपनाता है कि किसी भी कृत्य/नीति/कानून/नियम की उपायोगिता ही कोई कार्य शुभ है या अशुभ, को निर्धारित करने का आधार होना चाहिए। किसी कार्य या नीति से उपजी उपयोगिता की प्रकृति को ही उसके नैतिक मूल्यांकन का आधार मानना चाहिए। किसी कृत्य का नैतिक निर्णय स्वयं कृत्य पर आधारित नहीं होता, अपितु उस कृत्य द्वारा उत्पन्न शुभ या अशुभ परिणाम से होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, हमें किसी कृत्य के समग्र निष्पादनों या कृत्य के परिणाम या कृत्य के बारे में मूल्य–निर्णय देने हेतु इस कृत्य को जिन प्रतिफलों पारित करना पड़ता है उन समग्र प्रतिफलों, का मूल्यांकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण कृत्य का स्वयं में कोई मूल्य नही मानता है। सत्य बोलने के परिणामस्वरूप जो भी शुभ होता है उससे इतर भी उसका अंतर्भूत (स्वयं में) मूल्य हो सकता है। उपयोगितावादी ढांचे में शुभ तथा अशुभ को समझना इसे सुख तथा दुःख से जोड़ना है। किसी कार्य का शुभ या अशुभ होना इस बात पर निर्भर करता है कि उस कृत्य से कितना सुख या दुःख प्राप्त होता है। जेरेमी बेन्थम, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा हेनरी सिजविक इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक हैं।

नीतिशास्त्र का कर्तव्यपरक सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि नैतिक मानदण्ड या नियम ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। नैतिक कर्ता के कर्तव्यों को परिभाषित करने के लिए नैतिक मानदण्डों तथा नियमों की आवश्यकता होती है। इमानुएल काण्ट, जो इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं, कहते हैं कि किसी कृत्य या नीति का नैतिक मूल्यांकन, पूर्व परिभाषित नीति–नियमों के आधार पर किया जाना चाहिए ना कि उस कृत्य के परिणाम या प्रतिफलों के आधार पर। इसके अलावा यह सिद्धान्त यह भी मानता है कि अपने कर्तव्य का पालन करने के अलावा किसी बाहरी तत्व/प्रेरणा के लिए कर्तव्य का निर्वाह करना बौद्धिक नहीं होता है। "कर्तव्य के लिए कर्तव्य का पालन" इस सिद्धान्त का एक मुख्य मत है। नैतिक नियम, "झूठ बोलना गलत है", किसी भी परिस्थिति में गलत होगा चाहे वह झूठ किसी की जान बचा सकता है। परिस्थितिजन्य या परिणाम स्वरूप मिलने वाले लाभ किसी कृत्य के नैतिक निर्णय में महत्वपूर्ण नही हैं। इस

सिद्धान्त के अनुसार किसी कृत्य का नैतिक मूल्यांकन करने में उस कृत्य को करने हेतु व्यक्ति का अभिप्राय (इरादा) एक अनिवार्य कारक है।

उपरिवर्णित दोनों सिद्धान्तों के विपरीत, जहाँ नैतिक निर्णय लेने के लिए कृत्य या नीति का आंकलन किया जाता है, सद्गुण नीतिशास्त्र यह मानता है कि मुख्य रूप से व्यक्ति के चरित्र और उसके बाद उसके कृत्य का मूल्यांकन करना आवश्यक है। एक अच्छा व्यक्ति बनने के लिए तथा अच्छे कृत्य करने के लिए न्यायप्रिय, ईमानदार, सत्यवादी, साहसी और दूसरों के प्रति दयालु होना, जैसे चारित्रिक गुणों को विकसित करना चाहिए। झूठ बोलना, धोखा देना, और विश्वासघात आदि गुणों को किसी के चरित्र में पल्लवित–पुष्पित होने से हतोत्साहित करना चाहिए। यह नैतिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि यदि समाज में अच्छे चरित्र के व्यक्ति हैं, वह समाज अंततः एक अच्छा समाज बनेगा। सद्गुण नीतिशास्त्री व्यक्ति के नैतिक चरित्र का मूल्यांकन करने के लिए उनके आन्तरिक गुणों पर अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं ना कि बाह्य गुणों पर।

सभी नियामक सिद्धान्तों का उद्देश्य व्यक्तियों के कर्मों तथा चरित्र को निर्देशित करके एक अच्छे समाज की स्थापना करना है। लेकिन इन सिद्धान्तों को आलोचना का सामना भी करना पड़ा है। आगे आने वाले परिच्छेदों में हम उपरोक्त सभी नीतिशास्त्रीय सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेंगे।

बोध प्रश्न I

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) किसी कार्य के नैतिक मूल्यांकन के लिए उपयोगितावाद क्या सिद्धान्त प्रस्तुत करता है?

....

....

....

....

....

2) उपयोगितावाद तथा कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र में अन्तर की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

9.3 उपयोगितावाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन

जेम्स रेचल (2012) के अनुसार, नीतिशास्त्र के सिद्धान्त के रूप में, उपयोगितावाद को इसके तीन केन्द्रीय बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है। प्रथम, किसी कृत्य का नैतिक

मूल्यांकन करने के लिए उस कृत्य का सिर्फ परिणाम ही विचारणीय होता है। दूसरा, किसी कृत्य के परिणाम का आंकलन इस बात पर निर्भर करता है कि वह कृत्य गुण तथा मात्रा के सन्दर्भ में कितना सुख तथा दुःख उत्पन्न करता है। तीसरा, परिणामों का मूल्यांकन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति के सुख तथा दुःख को बराबर मानना चाहिए (रेचल, 2012ः पृ. 110)। सुख तथा दुःख का मूल्यांकन में किसी व्यक्ति की समाज में स्थिति, वर्ग, जाति, धर्म, लिंग, इत्यादि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

बेन्थम के अनुसार नैतिकता का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण जगत को जितना सम्भव हो उतना सुखमय बनाना है। इस सिद्धान्त की यह शर्त है कि यदि किसी व्यक्ति को नैतिक रूप से शुभ बनना है तो उसे किसी भी परिस्थिति में अपने कार्य के परिणामस्वरूप अधिकतम सुख प्रदान करना होगा। अधिकतम सुख का अर्थ है कि कर्ता के कृत्य से अधिक से अधिक व्यक्तियों को सुख की प्राप्ति होनी चाहिए। इसके अलावा नैतिक रूप से शुभ होने के लिए किसी भी कृत्य को दुःख से ज्यादा सुख उत्पन्न करना चाहिए, अन्यथा उस कृत्य को बुरा मानना चाहिए।

मिल के अनुसार सुख साध्य है, जिसकी इच्छा की जानी चाहिए, तथा इसके अलावा प्रत्येक वस्तु की इच्छा इस साध्य को प्राप्त करने के लिए की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, भोजन के लिए मेरी इच्छा मेरी भूख को मिटायेगी लेकिन भोजन करने से अन्ततः मुझे सुख की प्राप्ति होगी। अन्यथा, भूख की अवस्था से दुःख की प्राप्ति होगी जिससे हमें बचना चाहिए।

रेचल का अनुसरण करते हुए, इस सिद्धान्त की प्रथम आलोचना यह है कि क्या नैतिकता के लिए सिर्फ सुख ही मायने रखता है? इसके अलावा, क्या हम अपने कृत्य/नीतियों/नियमों का केवल इस आधार पर मूल्यांकन कर सकते हैं कि वह कितना सुख तथा दुःख प्रदान करते हैं? उदाहरण के लिए, क्या कुछ छात्रों के समूह द्वारा नये छात्रों से दुर्व्यवहार करना, उन्हें प्रताड़ित करना सही है?, क्योंकि यह उन्हे सुख देता है? क्या न्यायालय में झूठ बोलना अच्छा या उचित होगा क्योंकि ये अधिकतम लोगों को सुख पहुँचायेगा? इन प्रश्नों का महत्व इन्हें उलट कर देखने से भी समझा जा सकता है। क्या वह सब कुछ जिससे अधिकतम प्रसन्नता या सुख की प्राप्ति होती है, वह नैतिक रूप से सही या शुभ है? इस तरह तो एक निर्दोष व्यक्ति को मारना भी एक अच्छा कृत्य कहा जायेगा यदि इससे अधिकतम व्यक्तियों को सुख की प्राप्ति होती है। यहाँ पर एक और उदाहरण दिया जा सकता है जो अधिकतर उपयोगितावाद के विरोध में दिया जाता है। मान लीजिए एक व्यक्ति किसी परिवार के बाथरूम में झांकता है लेकिन परिवार के किसी सदस्य को इसकी जानकारी नहीं है। ऐसा करने से उस व्यक्ति को जैसा भी सुख प्राप्त हो रहा हो, वह किसी को नुकसान नही पहुँचा रहा है, ना ही किसी को इस बात का ज्ञान है। यह कृत्य उस व्यक्ति के लिए अधिकतम सुख उत्पन्न करता है, जब तक कि वह व्यक्ति पकड़ा नहीं जाता है। अब प्रश्न यह आता है कि क्या इस कृत्य को एक अच्छा कृत्य मानना चाहिए? उपयोगितावाद के समर्थक इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक देंगे। यदि हम यहाँ पर न्याय की अवधारणा तथा व्यक्ति की निजता के अधिकार के हनन की बात नहीं भी करते हैं तब भी शुभ और अशुभ की हमारी सामान्य समझ इस कृत्य को गलत या बुरा ही ठहरायेगी।

उपरोक्त वर्णित बात से सम्बन्धित, उपयोगितावाद के विरोध में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति का जीवन बहुत सारे कारकों से बना तथा निर्देशित होता है, और उनमें से

ही एक आनन्द/सुख होता है। सुख को अधिकतर मानवीय कृत्यों के लिए एकमात्र निर्देशक तत्त्व मानना इसे अत्यधिक प्रमुखता देना है। व्यक्ति के जीवन से जुड़े अन्य कारक जैसे न्याय, सत्य, अधिकार उपयोगितावादी ढाँचे में गौण लगते हैं। कोई यह आपत्ति कर सकता है कि न्याय या अधिकार जैसे मूल्य की स्थापना भी अन्ततः एक सुखमय समाज की ओर ही ले जाती है। यह मुद्दा सम्भव है। लेकिन न्याय किसी भी समाज में इस बात पर विचार किये बिना व्याप्त होना चाहिए कि इसके परिणाम से अधिकतर लोगों को सुख की प्राप्ति होगी या नहीं। उदाहरण के लिए, एक बुरे अपराधी को कठोर सजा मिलनी चाहिए चाहे उस घटना से अधिकतम लोगों को दुःख पहुँच सकता हो।

उपयोगितावाद के विरोध में लगाये गये आरोप, कि ये "अधिकतम" के नियम का समर्थक है, को न्याय तथा अधिकार के उल्लंघन का मुद्दा उठाकर सिद्ध कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर, यदि किसी देश में मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है और उससे अधिकतम लोगों को सुख की प्राप्ति होती है, तो उपयोगितावादी दार्शनिकों को इसे गलत कहने में कठिनाई होगी। इस तरह की परिस्थिति तब और जटिल हो जाती है जब बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक साबित करने के लिए लोगों की संख्या (उपयोगितावाद में लोगों की संख्या मायने रखती है) उदाहरणार्थ, क्रमशः 60 तथा 40 हो। शुभ तथा अशुभ का नैतिक निर्णय बहुसंख्यक के पक्ष में होगा क्योंकि उनकी संख्या अधिक होगी। यहाँ मुख्य प्रश्न यह है कि क्या नैतिकताय क्या किसी कृत्य, घटना या नीति शुभ या अशुभ होना, सिर्फ संख्या पर निर्भर करती है? परन्तु, कोई प्रतिकूल कृत्य जो उन 40 लोगों पर विपरीत प्रभाव डालेगा, गलत होगा। उपयोगितावाद अपने सिद्धान्त में इन मुद्दों को समायोजित नहीं करता हुआ प्रतीत होता है।

सामान्य तौर पर हम उपयोगितावादी दृष्टिकोण को परिणामवादी समझते हैं। इसका अर्थ यह है कि किसी कृत्य के नैतिक मूल्यांकन के लिए उस कृत्य का परिणाम मायने रखता है। यदि किसी कृत्य का परिणाम दुःख से ज्यादा सुख देने में असफल होता है, तब उस कृत्य को अशुभ मानना चाहिए। यदि परिणाम से अधिकतम व्यक्तियों को सुख की प्राप्ति होती है, तब वह कृत्य एक शुभ कृत्य है। हालांकि अमर्त्य सेन जैसे दार्शनिक ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है कि किसी कृत्य को करने से पहले उसके परिणाम के मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। सेन कहते हैं कि किसी कृत्य के नकारात्मक परिणाम से बचने के लिए हमें उस कृत्य से सम्बन्धित परिणामों का पूर्वानुमान (जो हम आसानी से कर सकते हैं) कर लेना चहिए और उसके बाद उस कृत्य को करने या ना करने का निर्णय लेना चाहिए। किसी कृत्य के स्वयं के बारे में नैतिक निर्णय लेने के लिए इस बात पर विचार करना जरूरी है कि वह कृत्य परिणामस्वरूप क्या प्रदान करेगा। लेकिन इस सिद्धान्त के विरुद्ध आपत्ति यह है कि परिणाम ही एकमात्र कारक नहीं है जिसके आधार पर मूल्य–निर्धारण किया जाना चाहिए। बहुत सारे मामलों में, कृत्य अपने आप में ही उचित या अनुचित हो सकता है। उदाहरण के लिए किसी बच्चे को प्रताड़ित करना गलत है चाहे इससे किसी भी तरह का परिणाम प्राप्त हो।

सुख के सम्बन्ध में उपयोगिता को अधिकतम करने का दृष्टिकोण उपयोगितावाद को एक सापेक्षवादी सिद्धान्त बनाता है। किसी भी सही या शुभ कृत्य को सभी परिस्थितियों में सार्वभौमिक रूप से सही या शुभ नहीं माना जा सकता है। मान लीजिए, कोई कार्य 'अ' अच्छा कृत्य है, क्योंकि किसी विशेष स्थिति में यह दुःख से ज्यादा अधिकतम सुख

प्रदान करता है। वही कार्य 'अ' किसी अलग परिस्थिति में अधिकतम सुख नहीं भी प्रदान कर सकता है। इसलिए इसे शुभ कार्य नही मानेंगे। किसी विशेष कृत्य का सन्दर्भ और परिस्थिति के आधार पर अलग–अलग मूल्य निर्धारण हो सकता है। हत्या, छल–कपट, भ्रष्टाचार, धोखा देना, झूठ बोलना आदि को पूर्ण रूप से गलत या अशुभ नहीं कहा जा सकता है, ये अधिकतम लोगों को अधिकतम सुख दे सकते हैं।

बोध प्रश्न II

टिप्पणी: क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) दार्शनिक उपयोगितावाद की परिणामवादी प्रकृति की आलोचना क्यों करते हैं?

....

....

....

....

....

2) उपयोगितावाद को सापेक्षवादी क्यों माना जाता है?

....

....

....

....

....

9.4 कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र, उपयोगितावाद के असमान, प्राथमिक रूप से शुद्ध बुद्धि से निर्देशित नैतिक कर्तव्यों को प्रमुखता देता है। उपयोगितावाद, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उपयोगिता को व्यापक सुख तथा दुःख के सन्दर्भ में परिभाषित करने का प्रयास करता है। इमानुएल काण्ट, जो कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के अग्रणी समर्थक हैं, का विचार है कि नैतिक नियम या सिद्धान्त स्वतः साध्य हैं। इन नियमों के अनुसार कर्तव्य का पालन करना किसी अन्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए नहीं होना चाहिए, दूसरे शब्दों में, "कर्तव्य के लिए कर्तव्य का पालन", इसके अलावा और कुछ नहीं। काण्ट ने इसकी व्याख्या निरपेक्ष कर्तव्यादेश (या आदेश) (Categorical Imperatives) तथा अभ्युगत (परिणामसापेक्ष; परिणाम की अपेक्षा वाले) कर्तव्यादेश (Hypothetical Imperatives) में अन्तर करके की है। परिणामसापेक्ष कर्तव्यादेश उस प्रकार के "चाहिए" हैं, जो एक व्यक्ति अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए प्रयोग करता है। उदाहरण के लिए, यदि मैं अच्छे प्राप्तांकों के साथ परीक्षा में पास होना चाहता हूँ तो मुझे पढ़ने में खूब मेहनत करनी चाहिए। या फिर, अगर मैं नही चाहता हूँ कि मैं कोरोना वायरस से संक्रमित हो जाऊं तो मुझे शारीरिक दूरी का पालन करना चाहिए। इन कार्यों का "चाहिए–स्वभाव" (should-ness or ought-ness) व्यक्ति की उन इच्छाओं पर निर्भर करता है जिनसे वह कुछ प्राप्त करना चाहता है। काण्ट के अनुसार,

"चाहिए–स्वभाव" नैतिक बाध्यता को परिभाषित करता है, और यह विषयिनिष्ठ नहीं हो सकता तथा यह व्यक्ति के जीवन में इच्छाओं के बदलने के साथ बदल नहीं सकता है। उन्हें प्रकृतितः 'निरपेक्ष' होना चाहिए, हमें उनका अनुसरण बिना किसी व्यक्तिपरक इच्छाओं के करना चाहिए। निरपेक्ष आदेश निरूपाधिक (unconditional) होना चाहिए, तथा उनका पालन किसी और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नहीं करना चाहिए बल्कि इसलिए करना चाहिए क्योंकि वह स्वयं में साध्य है। झूठ नही बोलना चाहिए, इस उदाहरण में झूठ बोलना इसलिए निषिद्ध नही है क्योंकि इससे दूसरों को हानि होगी या उनके साथ विश्वासघात होगा, लेकिन काण्ट के निरपेक्ष आदेश के सन्दर्भ में, झूठ बोलने की अनुमति ही नहीं है क्योंकि यह अपने आप में एक बुरा कृत्य है। किसी भी बौद्धिक या तर्कसंगत व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में झूठ नहीं बोलना चाहिए।

काण्ट के दर्शन में नैतिक नियमों का निर्धारण करने में सूत्रवाक्य (maxim) केन्द्रीय भूमिका निभाते हैं। काण्ट का प्रथम सूत्रवाक्य नैतिक नियमों में वस्तुनिष्ठता लाना है, जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि नैतिक नियम व्यक्तिपरक नहीं हो सकते हैं। प्रथम सूत्रवाक्य व्यक्ति को उन नैतिक नियमों के अनुसार कृत्य करने की मांग करता है, जिनका वह एक सार्वभौमिक नियम की तरह पालन कर सके। उदाहरण के लिए, तुमने अपने मित्र से एक वादा किया लेकिन उसे पूरा करने की तुम्हारी कोई इच्छा नहीं है, और अन्ततः तुमने वह वादा तोड़ दिया। अब प्रश्न यह है कि क्या इस नियम का पालन किया जा सकता है कि दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति/मित्र को वादा तोड़ना चाहिए? यदि हम इस नियम का पालन नहीं कर सकते हैं तो हम इस नैतिक नियम को सूत्रवाक्य नहीं मान सकते हैं। इसलिए हमें यह कृत्य नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार, व्यक्ति को झूठ नहीं बोलना चाहिए, उन्हें सत्य बोलना चाहिए; लोगों को धोखा नहीं देना चाहिए, किसी बेकसूर की हत्या नहीं करनी चाहिए, आदि को नैतिक नियम मान सकते हैं तथा इनका पालन इनके उल्लंघन बिना, सार्वभौमिक रूप से होना चाहिए। इसके अलावा इन कर्तव्यों का पालन करने का संकल्प किसी और उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होना चाहिए, अपितु सिर्फ इन कर्तव्यों के पालन के लिए ही होना चाहिए। किसी व्यक्ति की सहायता इसलिए नहीं करनी चाहिए क्योंकि वह कुछ कृपा चाहता है या उसे लोगों की मदद करना पसंद है। इन दोनों ही स्थितियों में मदद करना व्यक्तिपरक/विषयिनिष्ठ संकल्प से प्रेरित है। पर क्या हो यदि किसी को ऐसी कृपा पाने की कोई इच्छा ना हो और ना ही किसी को मदद करना पसंद हो? क्या तब भी मदद करना किसी के व्यक्तिपरक संकल्प जितना ही बाध्यकारी होगा? काण्ट के मतानुसार ऐसा नहीं होगा। इस प्रकार, यदि किसी की मदद करना नैतिक कर्तव्य माना जाता है, तो व्यक्ति को इसका पालन करना चाहिए चाहे उसमें कोई व्यक्तिपरक/विषयिनिष्ठ तत्व हो या ना हो। उन्हें अपने कर्तव्य का पालन सिर्फ, "कर्तव्य के लिए कर्तव्य" की भावना से करना चाहिए।

इस सन्दर्भ में काण्ट के विरोध में, मुख्य प्रश्न यह है कि यदि सत्य बोलना, जिसका सभी को एक नैतिक कर्तव्य के रूप में पालन करना चाहिए, किसी निर्दोष की हत्या के रूप में परिणत होता है, तब क्या होगा? सच बोलना या किसी निर्दोष की जान बचाना, इनमें से किसे प्राथमिक कर्तव्य कहा जा सकता है। काण्ट का नीतिशास्त्र परिणामवादी नहीं है। लोगों का यह मत हो सकता है कि किसी भी परिस्थिति में झूठ नही बोलना चाहिए चाहे इससे किसी निर्दोष की जान चली जाए। झूठ ना बोलने के कर्तव्य का पालन करके हम नैतिक नियम का अनुसरण कर सकते हैं, लेकिन क्या हम यह कह सकते हैं कि वह व्यक्ति हत्या का दोषी नहीं है? कम से कम, उस व्यक्ति ने

इस प्रकार से उस घटना में योगदान दिया है जिससे किसी निर्दोष व्यक्ति की जान चली गयी। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि जब व्यक्ति नैतिक दुविधा की स्थिति में होता है उस सन्दर्भ में काण्ट का कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र समस्या को समुचित रूप से संज्ञान में नहीं लेता।

नैतिक नियम प्रतिपादित करते समय कृत्य के परिणाम पर विचार ना करना नीतिशास्त्र के इस दृष्टिकोण के लिए समस्यात्मक हो सकता है। इस समस्या को हम भारतीय महाकाव्य *महाभारत* में अर्जुन तथा कृष्ण के बीच हुए संवाद से समझ सकते हैं। कृष्ण अर्जुन को यह समझाने का प्रयास कर रहे थे कि एक क्षत्रिय या योद्धा समुदाय का सदस्य होने के नाते अर्जुन का यह कर्तव्य है कि वो युद्ध करे चाहे यह उसके अपने लोगों के विरूद्ध ही क्यों ना हो। उसे परिणाम की चिंता नहीं करनी चाहिए। दूसरी तरफ, अर्जुन को युद्ध करने से संकोच हो रहा था क्योंकि उसे यह पूर्वानुमान था कि युद्ध से बड़ी संख्या में निर्दोष लोगों की जान जायेगी। अर्जुन युद्ध के परिणाम को पहले से भांप गये थे तथा इस प्रकार के युद्ध को अनुचित मान रहे थे जिससे बड़ी संख्या में निर्दोष लोगों की जान की हानि होगी। उपरोक्त उदाहरण यह दिखाता है कि कुछ परिस्थितियों में किसी भी कर्म के नैतिक निर्धारण से पहले उससे संबद्ध परिणामों पर विचार करना आवश्यक होता है। मनुष्य होने के नाते हम अनेक सीमाओं से घिरे रहते हैं, और हमारा अवस्थित होना (Situatedness) (हमारा किसी परिवेश, व्यवस्था, वातावरण आदि में स्थित होना) उनमें से एक है। नैतिक निर्णय लेने के लिए या जीवन की विभिन्न परिस्थतियों में कृत्य करने के लिए किसी नैतिक सिद्धान्त को निष्पक्ष रूप से लागू नही किया जा सकता है। परिस्थति का मूल्यांकन तथा संबद्ध कारक तथा कृत्य से संबद्ध परिणाम, नैतिक निर्णय लेने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। परिणाम के प्रति पूर्ण उदासीनता कभी–कभी हमारे कृत्यों को अनैतिक बना देती है।

काण्टीय नीतिशास्त्र के विरूद्ध आलोचना का एक और मुद्दा किसी नैतिक कृत्य को करने की प्रेरणा का होना है। मानव को अपने कर्तव्य का पालन सिर्फ कर्तव्य पालन के लिए करना चाहिए और किसी के लिए नहीं। काण्ट ने ऐसे किसी भी तत्व से बचने का प्रयास किया है जो किसी नैतिक कृत्य को विषयिनिष्ठ बनाता है। किसी कर्तव्य का पालन करने के लिए अलग–अलग प्रेरणा हो सकती है। कोई मानवता के नाते लोगों की सहायता करता हैय किसी को सच बोलने से कोई लाभ मिल सकता है, नहीं तो वह ऐसा नहीं करेगा। काण्ट के मतानुसार इन कृत्यों को हम नैतिक नहीं कह सकते हैं, क्योंकि नैतिक सिद्धान्त व्यक्तिपरक नहीं हो सकते तथा ये व्यक्तिगत वरीयता पर निर्भर नहीं कर सकते। एक व्यक्ति को मानवता के प्रति प्रेम है, इसलिए वह जरूरतमंद की सहायता करके अपने कर्तव्य का पालन करता है। लेकिन उनका क्या जिन्हें मानवता से प्रेम नहीं है या वे इस प्रकार के कार्य नहीं करते? उन लोगों का क्या जिन्हें कर्तव्य पालन से कोई लाभ नहीं मिल रहा है? तब, सैद्धान्तिक रूप से उन्हें अपने कर्तव्य का पालन ना करने का जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता है। इसलिए, सभी तर्कसंगत मनुष्यों के लिए एक सार्वभौमिक ढांचे की स्थापना के लिए काण्ट ने कर्तव्य का पालन करने के लिए इन सभी व्यक्तिगत प्राथमिकताओं पर रोक लगाने का प्रयास किया। काण्ट कहते हैं कि किसी अन्य प्रेरणा के बिना कर्तव्य का पालन सिर्फ कर्तव्य के लिए करना ही बौद्धिक है। नैतिक रूप से कृत्य करने के लिए विवेक ही हमारा प्राथमिक प्रेरक आधार होना चाहिए। काण्ट प्रेम, दया, तथा सम्बन्धपरक कृत्यों को आकस्मिक मानता है, तथा भावनाओं से प्रभावित इन कृत्यों को शुभ संकल्प के कृ

त्य नहीं माना जा सकता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या मनुष्य अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में इतना अप्रभावित/उदासीन हो सकता है कि वह सिर्फ विवेक से प्रेरित होकर नैतिक निर्णय ले सके? एक व्यक्ति उस स्थिति में अपनी माँ तथा एक अजनबी के जीवन को समान मूल्य कैसे दे सकता है जब दोनों डूब रहे हों और बचाने वाला सिर्फ वही एक ही व्यक्ति हो और वह दोनों में से किसी एक की जान ही बचा सकता है। ज्यादातर काण्टीय दार्शनिक यह मत देंगे कि उसे अपनी माँ को बचा सकता है, लेकिन माँ को बचाने का उसका यह निर्णय उस व्यक्ति का अपनी माँ के साथ माँ–पुत्र के सम्बन्ध पर निर्भर नहीं होना चाहिए। दो मनुष्यों के जीवन का मूल्य समान समझना चाहिए। तर्कसंगत या बौद्धिक होने का अर्थ है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं साध्य है, यह काण्ट के दूसरे सूत्रवाक्य का सार है। लेकिन समस्या अब भी वही है कि मनुष्य किस हद तक अपने सम्बन्धों, संवेदनाओं, भावानुरागों, अनुकम्पा, सन्दर्भगत वातावरण की उपेक्षा करने में सक्षम है, जो, तर्क के अलावा, हमारे नैतिक निर्णय के निर्माण में काफी हद तक योगदान करते हैं।

काण्ट के द्वितीय सूत्रवाक्य ने आधुनिक मानव अधिकारों को आकार देने में काफी योगदान दिया है। प्रत्येक मनुष्य को स्वयं को तथा प्रत्येक अन्य व्यक्ति को हमेशा एक साध्य के रूप में देखना चाहिए, तथा केवल एक साधन के रूप में कभी नहीं देखना चाहिए। यह सूत्रवाक्य मानव का अंतर्भूत मूल्य, उसका मानव होना सुनिश्चित करता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि काण्ट के दर्शन में व्यक्तिपन, व्यक्ति होना (personhood) मनुष्य के तर्कसंगत होने के आधार पर परिभाषित किया गया है। यह सूत्रवाक्य व्यक्ति को शोषण से बचाना सुनिश्चित करता है तथा उनके कल्याण के लिए 'संकल्प' के प्रयोग को बढ़ावा देता है, अधिकारों का सम्मान करता है तथा हानि पहुँचाने से रोकता है। मानव को स्वयं साध्य के रूप में देखना साध्य के साम्राज्य (Kingdom of Ends) की ओर अग्रसर करता है, जो कि काण्ट के तृतीय सूत्रवाक्य का उद्देश्य है।

यद्यपि यह सूत्रवाक्य समाज में मनुष्य के व्यापक कल्याण की बात करता है, लेकिन सभी को एक साध्य के रूप मे देखना कुछ असहज है। हमें समाज के लिए दण्ड नहीं देना चाहिए। काण्ट ने दण्ड देने के उपयोगितावाद के तर्क का खण्डन किया है क्योंकि वह अपराधियों के साथ, अन्य व्यक्तियों के सुख के लिए एक साधन मात्र के रूप में व्यवहार करना होगा। काण्ट के मतानुसार दण्ड की अवधारणा न्याय से सम्बन्धित है, और हमें दण्ड का निर्णय करना चाहिए जो अपराध के लिए उचित है। तो "आँख के बदले आँख" काण्ट के दण्ड की अवधारणा को समझने के लिए उपयुक्त सिद्धान्त है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता हैउस स्थिति में कैसे निर्णय लेंगे यदि अपराधी स्वयं अपनी परिस्थितियों का शिकार हो, किसी ने गलती से किसी निर्दोष की हत्या कर दी हो? क्या हम उन परिस्थितियों का किसी अन्य सिद्धान्त से मूल्यांकन कर सकते हैं? या फिर केवल अपराध को देखकर ही हम उन्हें सजा देंगे, जो उन्होंने किसी परिस्थिति या सन्दर्भ से निरपेक्ष होकर किया? इस प्रकार के प्रश्न हमें यह विचार करने पर विवश करते हैं कि काण्ट के नीतिशास्त्र ने सभी नैतिक मुद्दों को समायोजित नहीं किया है।

बोध प्रश्न III

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) निरपेक्ष आदेश या कर्तव्यादेश को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

....

....

2) काण्टीय कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र के विरूद्ध प्रमुख आलोचनाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

9.5 सद्‌गुण नीतिशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन

उपयोगितावाद तथा काण्ट का कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र इस प्रश्न के इर्द गिर्द केन्द्रित है कि नैतिक रूप से कृत्य कैसे किया जाए या वह क्या है जो एक कृत्य को शुभ या अशुभ बनाता है? सद्‌गुण नीतिशास्त्र प्राचीन काल से ही यह प्रश्न पूछता आ रहा है, जैसाकि रेचल लिखते हैं, "चरित्र के कौन से गुण किसी व्यक्ति को अच्छा व्यक्ति बनाते हैं?" (रेचलः 2012, पृ. 157)। कर्म–निर्देशित तत्वों को ढूंढने की अपेक्षा, उन्होंने उन सद्‌गुणों की खोज की जो व्यक्ति को शुभ बनाते हैं। प्लेटो ने सद्‌गुणों को मनुष्य के बाहर ना परिभाषित करके उनमें आभ्यंतर ही परिभाषित किया है। सद्‌गुणों का निवास मनुष्य के अन्दर ही होता है। उपयोगितावाद और कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र कृत्यों का शुभ व अशुभ होना नैतिक कर्तव्यों में तथा कृत्य के परिणाम में ढूंढने का प्रयास करते हैं। *रिपब्लिक* में प्लेटो कहते हैं कि यदि मनुष्य सद्‌गुणी होगा तो उसके कृत्य शुभ होंगे। प्लेटो और अरस्तू दोनों का यह मत है कि मनुष्य की शुभता कृत्यों को देखकर निर्धारित नहीं की जा सकती है। यदि यह एक सद्‌गुण है, तो इसे प्रत्येक कृत्य में आदतन तथा सतत रूप से होना चाहिए। हम किसी हत्यारे का एक शुभ कृत्य देखकर उसे अच्छा नही मान सकते हैं। अन्य नैतिक सिद्धान्त व्यक्ति को अच्छा इन्सान बनाने में या सद्‌गुणों का विकास करने पर विचार नहीं करते हैं। वे इस बात पर ध्यान देते हैं कि नैतिक निर्णय लेते समय हमें क्या सोचना चाहिए, हमें किस प्रकार कर्म करना चाहिए, और किसी कर्म को शुभ या अशुभ निर्धारित करने के लिए किस प्रकार उसका आंकलन तथा नैतिक निर्धारण करना चाहिए। सद्‌गुण नीतिशास्त्र विभिन्न प्रकार के सद्‌गुणों की बात करता है जिन्हें मनुष्य को विकसित करना चाहिए जिससे शुभता से किसी कृत्य को करना अल्पकालिक नहीं बल्कि उनकी आदत होनी चहिए। एलिजाबेथ एन्सकॉम्ब (1958) के अनुसार समकालीन समय में सद्‌गुण

नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों की अवहेलना की गयी है, और ऐसा लगता है कि जिन्होंने इसका अनुसरण करने का प्रयास किया है वो भी मूल सिद्धान्त से भटक गये हैं। हमें एक बार फिर उसी दृष्टिकोण पर वापस जाने की आवश्यकता है जो ग्रीक दार्शनिकों, विशेष रूप से अरस्तू ने विकसित किया है।

प्लेटो इस प्रश्न का उत्तर कि सद्गुणी कैसे बन सकते हैं, यह कहकर देते हैं कि आत्मा के विभिन्न भागों (विवेक, साहस, संयम) के बीच सामंजस्य/संतुलन होना चाहिए। अरस्तू ने सामंजस्य को परिभाषित करने का प्रयास यह कहकर किया है कि सद्गुण दो अवगुणों या दुर्गुणों के मध्य का बिन्दु है– जिनमें से एक चरम अवस्था है तथा दूसरा अपर्याप्त है। अरस्तू ने इस मध्यबिन्दु को "स्वर्णिम नियम" नाम दिया है। तो यह कहना कि साहसी होना एक सद्गुण है, अरस्तू के अनुसार इसका अर्थ होगा, कि किसी व्यक्ति को उतावला नहीं होना चाहिए जो कि लापरवाही का कारण होगाय तथा किसी को कायर भी नहीं होना चाहिए। यह प्रत्येक सद्गुण पर लागू होता है। प्लेटो ने इस मुद्दे पर गहन विचार किया है। प्लेटो के अनुसार सद्गुणी होने के लिए आत्मा को सामंजस्य की अवस्था में रहना होगा जहाँ विवेक, साहस, तथा संयम साथ–साथ हों। प्लेटो सामंजस्य की इस स्थिति को अरस्तू के "स्वर्णिम नियम" को प्राप्त करने के किए एक शर्त के रूप में रखेंगे। प्लेटो के अनुसार मानसिक सामंजस्य की स्थिति प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति नियत रूप से शुभता से कृत्य करेगा।

इस सिद्धान्त के विरुद्ध मुख्य आलोचना यह व्याख्या ना कर पाना है कि किसी सद्गुण को सद्गुण क्यों माना जाना चाहिए? सत्यता को सद्गुण क्यों माने? किसी भी सद्गुण को सद्गुण क्यों कहा जाए? उपयोगितावाद के सन्दर्भ में भी तुरन्त यह व्याख्या दी जायेगी कि उपयोगितावाद के अनुसार किसी कार्य को शुभ या अशुभ क्यों मानेंगे। काण्टीय नीतिशास्त्र का अनुसरण करने वाले भी नैतिक निर्णय के लिए नियमों को आधार मानेंगे। लेकिन सद्गुण नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में इस सम्बन्ध में व्याख्या अपर्याप्त है। अतः इस नैतिक सिद्धान्त द्वारा दयालुता/साहस/सत्यता को सद्गुण मानने का कोई मजबूत आधार नहीं दिया गया है। इसके अलावा, बहुत से लोगों का यह मानना है कि सद्गुण स्वयं में मूल्यवान नहीं होते हैं, वे मूल्यवान इसलिए होते हैं क्योंकि वे समाज के सम्पूर्ण कल्याण में सहायता करते हैं (उपयोगितावाद), या फिर वे कर्तव्य–पालन में सहायता करते हैं (कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र)। जैसे कि, दूसरों के प्रति दया एक सद्गुण है क्योंकि ऐसा करके हम समाज कल्याण को बढ़ाते हैं। बहुत लोग इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं कि रिपब्लिक में प्लेटो ने अंततः यह कहा है कि न्याय एक सद्गुण के रूप में स्वयं में तथा जो परिणाम यह लाता है उस रूप में भी मूल्यवान है।

सद्गुण नीतिशास्त्र की एक अन्य आलोचना यह की जाती है कि जब व्यक्ति नैतिक दुविधा में होता है तब यह नैतिक सिद्धान्त मार्गदर्शन के लिए बहुत कम ही विचार प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति सच बोलने तथा चुप रहने के बीच दुविधा में हो सकता है, सच बोलने से वह दूसरे व्यक्ति की भावनाओं को दुःख पहुंचायेगा और चुप रहकर वह दयालु तथा करूणामय बन जायेगा। दो सद्गुणों के मध्य टकराव की स्थिति में व्यक्ति सद्गुण की प्राथमिकता का चुनाव कैसे करेगा?

9.6 सारांश

इस इकाई में हमने विभिन्न नैतिक दृष्टिकोणों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया है। यहाँ हम कह सकते हैं कि कोई भी सिद्धान्त दोषहीन और आलोचना के परे नहीं है। प्रत्येक सिद्धान्त की अपनी मजबूती है और प्रत्येक सिद्धान्त ने दर्शन

के इतिहास पर अपने चिन्ह अंकित किये हैं। इन दृष्टिकोणों के बिना नीतिशास्त्र में समकालीन विकास सम्भव नहीं था। आलोचना का लक्ष्य किसी सिद्धान्त को तिरस्कृत करना नहीं होना चाहिए। आलोचनाएं सिद्धान्त के समस्यात्मक पहलुओं को दिखाती हैं और अवधारणाओं की कमियों की पूर्ति करने का प्रयास करती हैं। सभी आलोचनाओं के बावजूद, कोई भी इन सिद्धान्तों के शुभ और अशुभ या उचित और अनुचित के भेद की समझ में सकारात्मक योगदान को नकार नहीं सकता है।

बोध प्रश्न IV

टिप्पणीः क) उत्तर हेतु दिये गये स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

1) सद्गुण नीतिशास्त्र का विषय नीतिशास्त्र के अन्य दृष्टिकोणों से किस तरह भिन्न है?

....

....

....

....

....

2) सद्गुण नीतिशास्त्र के विरुद्ध मुख्य आलोचनाओं की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

....

9.7 कुंजी शब्द

आलोचनात्मक मूल्यांकन : किसी अवधारणा/सिद्धान्त का आलोचनात्मक परीक्षण।

नीति–दर्शन : नीति–दर्शन नैतिक जीवन में नियम/नियम–निर्माण के बारे में है। नीति–दर्शन के कुछ संगत प्रश्न हैं; नैतिक सिद्धान्त क्या हैं?, इन नैतिक सिद्धान्तों को स्थापित करने का आधार क्या है?

9.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

ब्लेकबर्न, एस. एथिक्सः *अ वेरी शॉर्ट इन्ट्रोडक्शन.* ऑक्सफोर्डः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.

ग्राहम, जी. *एट थ्योरीज ऑफ एथिक्स.* लंदन एण्ड न्यू यॉर्कः राउटलेज, 2004.

पोज्मेन, एल. *डिस्कवरिंग राइट एण्ड रांग.* बेल्मॉन्ट, सीएः वडस्वर्थ, 1990.

रेशेल्स, जे., एण्ड रेशेल्स, एस. *दि एलीमेन्ट्स ऑफ मॉरल फिलोसॉफी.* 7. न्यू यॉर्क, 2012.

सेन, ए. के. *दि आइडिया ऑफ जस्टिस.* हार्वर्डः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2009.

सिन्हा, जे. *अ मैन्युअल ऑफ एथिक्स.* केल्कट्टाः सिन्हा पब्लिकेशन हाउस, 1962.

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न I

1) उपयोगितावाद किसी कृत्य के शुभ या अशुभ के रूप में मूल्यांकन का आधार उपयोगिता को बनाता है। इस सिद्धान्त के समर्थकों ने उपयोगिता को सुख के पदों में परिभाषित किया है। उन्होंने सिद्धान्त दिया है कि यदि कोई कृत्य अधिकतम व्यक्तियों में दर्द/दुःख की अपेक्षा सुख/प्रसन्नता उत्पन्न करता है, तब यह कृत्य शुभ माना जायेगा अन्यथा, इसे अशुभ माना जायेगा।

2) उपयोगितावाद और कर्तव्यशास्त्र के मध्य मुख्य अन्तर यह है कि उपयोगितावाद कहता है कि कोई कृत्य शुभ है या अशुभ यह निर्धारित करने के लिए उस कृत्य के परिणामों को विश्लेषित करने की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, कर्तव्यशास्त्र बताता है कि किसी कृत्य के बारे में नैतिक निर्णय बनाने के लिए हमें स्वयं कृत्य की परीक्षा करने की आवश्यकता है। इसके अलावा, उपयोगितावाद सुख और दुःख के पदों में उपयोगिता के प्रश्न पर केन्द्रित है। कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र किसी कर्तव्य द्वारा उत्पन्न दुःख या सुख की अपेक्षा से रहित कर्तव्य की अवधारणा पर केन्द्रित है।

बोध प्रश्न II

1) उपयोगितावाद परिणामवादी है क्योंकि यह किसी कृत्य के नैतिक मूल्यांकन में उस कृत्य से उत्पन्न परिणामों को प्राथमिकता देता है। कोई कृत्य/नीति/नियम शुभ है या अशुभ यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह कृत्य परिणाम के रूप में कितना दुःख या सुख उत्पन्न करते है। उपयोगितावाद के विरुद्ध आक्षेप यह है कि यह सिद्धान्त इस बात को नजरंदाज करता है कि कृत्य अपने आप में शुभ या अशुभ हो सकता है। कृत्यों का स्वयं में मूल्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त, परिणाम सदैव किसी कृत्य का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, लोग किसी निर्दोष को क्षति पहुँचाने में प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन किसी निर्दोष को क्षति पहुँचाना अपने आप में अशुभ या बुरा है।

2) उपयोगितावाद द्वारा प्रदत्त नैतिक सिद्धान्त है कि कोई कृत्य शुभ है यदि यह अधिकतम व्यक्तियों में अधिकतम प्रसन्नता उत्पन्न करता है, अन्यथा इसे अशुभ माना जायेगा। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने आपत्ति प्रस्तुत की है कि यदि ऐसा है तो किसी कृत्य के बारे में कोई नैतिक निर्णय बनाने में कोई एकरूपता नहीं होगी। कोई कृत्य–विशेष किसी एक परिस्थिति में शुभ कहा जा सकता है क्योंकि यह दुःख की अपेक्षा सुख उत्पन्न कर सकता है, लेकिन समान कृत्य किसी भिन्न परिस्थिति में अशुभ माना जा सकता है क्योंकि यह सुख की अपेक्षा दुःख उत्पन्न करता है। अतः, शुभ और अशुभ परिस्थिति–निर्भर हैं और इस प्रकार सापेक्ष।

बोध प्रश्न III

1) काण्ट निरपेक्ष आदेश को नैतिक दायित्व की समझ में प्रस्तुत करता है। निरपेक्ष आदेश, सापेक्ष आदेश के लिए अनुप्रयुक्त किसी व्यक्ति की इच्छा या किसी अन्य

साध्य की पूर्ति पर निर्भर नहीं हैं। निरपेक्ष आदेश की प्रकृति है 'आपको इसे करना चाहिए' बिना इस अपेक्षा के कि कोई इसे करने की इच्छा करता है या नहीं। यदि नैतिक नियम किसी कृत्य को दायित्व के तौर पर प्रस्तुत करते हैं, तो इसे किया जाना चाहिए। निरपेक्ष आदेश निरूपाधिक (शर्तरहित) और अपवाद–रहित हैं। किसी को भी किसी भी स्थिति में उनका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

2) काण्ट के कर्तव्यशास्त्र के विरुद्ध एक प्रमुख आपत्ति यह है कि यह सिद्धान्त नैतिक दुविधाओं के सम्बन्ध में असंदिग्ध रूप से सही नहीं है। जब दो नैतिक कर्तव्यों में संघर्ष होता है, जैसे सत्य बोलना या निर्दोष का जीवन बचाना में से कौन–से कर्तव्य को वरीयता मिलनी चाहिए, यह सिद्धान्त इस तरह के प्रश्नों के सम्बन्ध में मुख्यतः मौन है, या हम कह सकते हैं कि यह हमारा पथ–निर्देशन नहीं करती है। एक अन्य महत्वपूर्ण आपत्ति यह है कि काण्ट का निरपेक्ष आदेश हमें कर्तव्य की पूर्ति में उत्पन्न परिणामों से सम्बन्धित किसी भी चिंता पर विचार करने से रोकता है। कभी–कभार हमें किसी कृत्य के प्रासंगिक निहितार्थों को देखने की आवश्यकता होती है; अन्यथा, हमारे एक कृत्य से अनेक नकारात्मक परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं।

बोध प्रश्न IV

1) सद्गुण नीतिशास्त्र, मुख्यतः, उपयोगितावाद और कर्तव्यपरक नीतिशास्त्र से पूर्णतः भिन्न प्रश्न पूछता है। यह पूछने के बजाय कि किसी कृत्य को क्या है जो अच्छा या बुरा बनाता है, यह उन चारित्रिक गुणों के बारे में पूछता है जो किसी व्यक्ति को अच्छा या बुरा बनाते हैं। इसलिए, सद्गुण नीतिशास्त्र का मुख्य लक्ष्य नीतिशास्त्र के अन्य दो दृष्टिकोणों से भिन्न है। अन्य महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि सद्गुण नीतिशास्त्र नैतिक मूल्यात्मक निर्णय बनाने के लिए किसी कृत्य के अकेले दृष्टान्त को प्राथमिकता नहीं देता है, जैसाकि अन्य दो सिद्धान्त करते हैं। यह सद्गुण को स्थिर (आदतन) स्वीकारता है। हम किसी एक किये गये अच्छे कृत्य के आधार पर किसी व्यक्ति का मूल्यांकन अच्छे व्यक्ति के तौर पर नहीं कर सकते हैं। हो सकता है वह पेशेवर अपराधी हो, और उसने अच्छा कार्य संयोगवश किया हो।

2) सद्गुण नीतिशास्त्र की मुख्य आलोचना यह है कि अंततः सद्गुण को सद्गुण क्यों स्वीकारना चाहिए। हमें दयालुता या ईमानदारी को सद्गुण क्यों स्वीकारना चाहिए? सद्गुण नीतिशास्त्र इस प्रश्न का कोई समुचित उत्तर नहीं देता है।